विज्ञान

मानवकृत एवं प्राकृतिक आपदायें

जुलाई 1991 अंक

वार्षिक मूल्य 25 रुपये   प्रति अंक : 2 50 पैसे

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
जुलाई 1991; वर्ष 77 अंक 4

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे
यह अंक : 4 रु०

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7ए, बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

बाढ़ : एक विनाशकारी विभीषिका

○प्रमोद कुमार शुक्ल○

बाढ़ एक प्राकृतिक प्रकोप है, जो अकाल और सूखे की भाँति राष्ट्र के आर्थिक सामाजिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर डालती है। अचानक ही जब नदी में पानी नदी के बहाव की क्षमता से अधिक हो जाता है, तब नदी का पानी उसके किनारों को तोड़कर आस-पास के क्षेत्रों में फैल कर गाँव, शहर, खेत, पशु तथा मनुष्यों को नुकसान पहुँचाने लग जाता है, तो उसे बाढ़ कहते हैं। संक्षेप में नदी-जल के उस विस्तार को या फैलाव को बाढ़ कहते हैं, जिससे जन-धन की अपार क्षति होती है।

विगत वर्षों में अनवरत वन विनाश के कारण न केवल वर्षा की मात्रा कम हुई है वरन् भूमिगत जल के स्तर एवं जल स्रोतों में भी कमी आई, अपितु इसके चखते बाढ़, सूखा, भूकम्प, भू-स्खलन एवं अन्य पारिस्थितिकी विक्षोभों में क्रमशः वृद्धि होती जा रही है। जब तक वर्षा का जल पृथ्वी तक नहीं पहुँचता तब तक उस जल पर मानव-नियन्त्रण बहुत कम होता है। 1974 की 'यूनेस्को' रिपोर्ट के अनुसार जब एक बार पानी पृथ्वी पर बरस जाता है तो चाहे यह एक उत्पादक स्रोत बने या विनाशकारी विपदा, अधिकतर वह इस बात पर निर्भर है कि मानव भूमि तथा वनस्पति का प्रबन्ध कैसे कर रहा है।

देश की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के आवास की पूर्ति के लिए निकटस्थ वनों के सफाये के साथ ही साथ बहुत सी दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दुर्गम स्थानों के वनों का भी विनाश हो रहा है और वर्ष-प्रतिवर्ष बाढ़ों की वृद्धि होती जा रही है। आज 1950 की तुलना में भारत में बाढ़ों से होने वाला नुकसान चौदह गुना बढ़ गया है। भारतीय पत्रिका (डिजास्टर मैनेजमेंट) में ए० के० डे साफ-साफ कहते हैं कि भारत में अधिकाधिक बाढ़ें वनोन्मूलन का सीधा परिणाम हैं। वैज्ञानिकों की आम राय है कि बाढ़ व सूखे को प्राकृतिक प्रकोप न माना जाये। ये मानव द्वारा प्रकृति के संसाधनों के अत्यधिक दोहन का परिणाम हैं इसलिए मानव को इसे अपने द्वारा किये गये कुदरत के साथ खिलवाड़ का नतीजा मानना चाहिए और अपने कुकृत्यों की सजा समझनी चाहिये। इनसे बचने के लिए जरूरी है कि वनस्पति, जल, वायु, मिट्टी तथा पर्यावरण के अन्य घटकों को संतुलित एवं संरक्षित रखा जाय।

भारत में बाढ़ से होने वाले नुकसान का अनुमान

देश के किसी न किसी भाग में विभिन्न भीषणता वाली बाढ़ों का आना प्रत्येक वर्ष बढ़ता जा रहा है। उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और असम तथा गंगा-ब्रह्मपुत्र नदियों के मैदानों में बाढ़ों का आना एक वार्षिक क्रिया है, जिसके परिणाम मानव एवं पशु सभी को भुगतने पड़ते हैं। दक्षिणी भारत में डेल्टाई क्षेत्रों तथा समुद्रतटीय भागों में बाढ़ें अभिशाप का रूप लेती हैं। 1953 से 1974 तक बाढ़ों के फलस्वरूप औसतन 168 करोड़ रुपये की वार्षिक हानि होती रही है। 1973 में बाढ़ों और चक्रवातों के फलस्वरूप 500 करोड़ रुपये, 1974 में

जूनियर रिसर्च फेलो, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद-2

569 करोड़ रुपये तथा 1975 में 500 करोड़ खर्च हुए और 1979 में 597 करोड़ रुपये की हानि उठानी पड़ी। 1981 में राजस्थान का जयपुर, भरतपुर, टोंक व सवाई माधोपुर क्षेत्र बाढ़ग्रस्त रहे। मुम्बई (बम्बई) व उसके उप-नगरीय क्षेत्र भी प्रभावित रहे। एक अनुमान के अनुसार 1132.4 करोड़ रुपयों की क्षति हुई। 1982 की बाढ़ ने असम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों को प्रभावित कर देश में कुल नुकसान लगभग 1410 करोड़ रुपयों का हुआ। यही नहीं, करीब 4.73 करोड़ आदमी बाढ़ के कोपभाजन बने।

सामान्यतः औसतन प्रतिवर्ष कुल हानि का 80 प्रतिशत फसलों और 20 प्रतिशत मकानों तथा सार्वजनिक सम्पत्ति का होता है। औसतन 74 लाख हेक्टेयर भूमि प्रभावित होती है, जिसमें 31 लाख हेक्टेयर कृष्य भूमि होती है। लगभग 15 लाख व्यक्ति और 30,000 पशु प्रतिवर्ष बाढ़ से प्रभावित होते हैं। देश का 3.20 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ों की चपेट में आता रहता है। इससे सबसे अधिक हानि उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, असम में ब्रह्मपुत्र के पहाड़ी क्षेत्र, गुजरात, मध्यप्रदेश में नर्वदा नदी के अपवाह क्षेत्र, कर्नाटक के दक्षिणी कनारा जिले, मणिपुर तथा उड़ीसा और अरुणाचल प्रदेश में होती है। पश्चिम बंगाल के दक्षिणी भाग तथा राजस्थान के अजमेर बाड़मेर तथा भरतपुर नगरों को विशेष क्षति उठानी पड़ती हैं। सारणी-1 में देश में 1953 से 1981 तक हुए बाढ़ से नुकसान को

सारणी-1

देश में बाढ़ों से क्षति (1953-1981)

वर्ष	क्षतिग्रस्त फसल क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)	कुल नुकसान (1952-53 की कीमत पर करोड़ रुपये में)
1953	9.3	250
1960	26.5	550
1962	35.6	750
1969	43.4	1490
1970	48.5	1210
1971	62.4	2630
1973	76.0	1790
1976	76.8	2390
1977	82.5	2820
1978	100.5	3420
1981	16.2	480

स्रोत : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, 1991

(iv) तटीय भागों में चक्रवातों एवं भीषण तूफानों के कारण सामुद्रिक जल स्थल के भागों को अपनी चपेट में ले लेता है।

(v) खेती तथा सिंचाई किये जाने वाले क्षेत्रों में अतिरिक्त जल की निकासी की व्यवस्था का अभाव।

बाढ़ के प्रभाव

सामान्यतः बाढ़ के दो प्रकार के प्रभाव माने जाते हैं—

(i) **तत्कालिक प्रभाव** : बाढ़ पशु धन, जन-धन को नुकसान पहुँचाती है। कृष्य भूमि व फसल चौपट हो जाती है। खेत-खलिहान नष्ट हो जाने से अनाज व अन्य कृषि उत्पादन घट जाता है। कृषि योग्य भूमि में कमी आ जाती है। रेल की पटरी, सड़क, पुल, तार, टेलीफोन व बिजली के पोल टूट जाते हैं। कच्चे-पक्के सभी मकान टूट जाते हैं। फैक्ट्री, कारखाने, दुकानें नष्ट हो जाती हैं। कच्चे माल (कृषि सम्बन्धी) की कमी से कारखाने या तो बन्द हो जाते हैं या कम काम करते हैं, जिससे बेरोजगारी बढ़ जाती है और उत्पादन घट जाता है। अनाज, बर्तन व उपयोग की अन्य वस्तुयें सामान नष्ट हो जाती हैं, जिससे अनाज व अन्य पदार्थों की कीमतें बढ़ जाती हैं।

वन क्षेत्र में जल-प्लवन (Water logging) होने से वृक्षों की जड़ें सड़ जाती है और वृक्ष उखड़ कर गिर जाते हैं। अतएव वनों के विनष्ट होने से सम्पूर्ण जैव-भू-रसायन चक्रों के भंग होने तथा पारिस्थितिकी तन्त्र के अस्थिर होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वृक्षों के विनष्ट होने का प्रभाव सिर्फ उसी स्थान विशेष या काल तक सीमित नहीं रहता जहाँ के वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, वरन् इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है क्योंकि जैव-भू-रसायन चक्रों द्वारा सभी क्षेत्र परस्पर आबद्ध हैं।

अत्यधिक बाढ़ से वृक्ष, फसल, मिट्टी का ऊपरी आवरण (घास) नष्ट हो जाती है, जिससे उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी पर्त बहकर नदी की तली में जमा हो जाती है, जिससे कृषि उपज तो कम हो जाता है साथ नदियों का जल संभरण क्षेत्र भी कम हो जाता है। भीषण वर्षा एवं बाढ़ों से भूमि कटाव की विभीषिका ने भारत में अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रखा है। इसे भारतीय कृषि की पहली श्रेणी का शत्रु माना जाता है।

(ii) **दीर्घकालिक प्रभाव** : बाढ़ से अनियन्त्रित जल फैलाव होता है, जिससे प्रभावित क्षेत्रों में पानी फैलकर तालाबों, कुँओं, झीलों और यहाँ तक कि भूगर्भ जल में मिल जाता है और इस बाढ़ के जल में खेतों की फसलों के अवशेष, कारखानों का कचरा, पशु व मनुष्यों के शव पेड़-पौधों की पत्तियाँ आदि इधर-उधर बिखेर दी जाती हैं जो बहुत लम्बे समय तक सड़ते गलते रहते हैं। इस दूषित जल के उपयोग से मनुष्यों और पशुओं में अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैल जाती हैं। इतना ही नहीं, संयुक्त राष्ट्रसंघ के पर्यावरण सम्मेलन (1972) के लिए भारत सरकार द्वारा तैयार किये गये दस्तावेज में स्वीकार किया गया है कि जल में अवशिष्ट पदार्थ व कूड़ा-कचड़ा सड़ने से कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर ऑक्साइड एवं मीथेन आदि जहरीली गैसें निकलती हैं जो कि वायु को भी प्रदूषित करती हैं परिणामस्वरूप जल व वायु प्रदूषण से सम्पूर्ण पर्यावरण ही दूषित हो जाता है।

दूषित जल में कवक, विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ, कृमि व लेप्टोस्पाइरा आदि सूक्ष्म जीव पलते हैं जो कि रोगजनक होते हैं तथा मनुष्यों और पशुओं में निम्न बीमारियाँ पैदा करते हैं –

(iv) तटीय भागों में चक्रवातों एवं भीषण तूफानों के कारण सामुद्रिक जल स्थल के भागों को अपनी चपेट में ले लेता है।

(v) खेती तथा सिंचाई किये जाने वाले क्षेत्रों में अतिरिक्त जल की निकासी की व्यवस्था का अभाव।

बाढ़ के प्रभाव

सामान्यत: बाढ़ के दो प्रकार के प्रभाव माने जाते हैं—

(i) **तत्कालिक प्रभाव** : बाढ़ पशु धन, जन-धन को नुकसान पहुँचाती है। कृष्य भूमि व फसल चौपट हो जाती है। खेत-खलिहान नष्ट हो जाने से अनाज व अन्य कृषि उत्पादन घट जाता है। कृषि योग्य भूमि में कमी आ जाती है। रेल की पटरी, सड़क, पुल, तार, टेलीफोन व बिजली के पोल टूट जाते हैं। कच्चे-पक्के सभी मकान टूट जाते हैं। फैक्ट्री, कारखाने, दुकानें नष्ट हो जाती हैं। कच्चे माल (कृषि सम्बन्धी) की कमी से कारखाने या तो बन्द हो जाते हैं या कम काम करते हैं, जिससे बेरोजगारी बढ़ जाती है और उत्पादन घट जाता है। अनाज, बर्तन व उपयोग की अन्य वस्तुयें सामान नष्ट हो जाती हैं, जिससे अनाज व अन्य पदार्थों की कीमतें बढ़ जाती हैं।

वन क्षेत्र में जल-प्लवन (Water logging) होने से वृक्षों की जड़ें सड़ जाती है और वृक्ष उखड़ कर गिर जाते हैं। अतएव वनों के विनष्ट होने से सम्पूर्ण जैव-भू-रसायन चक्रों के भंग होने तथा पारिस्थितिकी तन्त्र के अस्थिर होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वृक्षों के विनष्ट होने का प्रभाव सिर्फ उसी स्थान विशेष या काल तक सीमित नहीं रहता जहाँ के वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, वरन् इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है क्योंकि जैव-भू-रसायन चक्रों द्वारा सभी क्षेत्र परस्पर आबद्ध हैं।

अत्यधिक बाढ़ से वृक्ष, फसल, मिट्टी का ऊपरी आवरण (घास) नष्ट हो जाती है, जिससे उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी पर्तं बहकर नदी की तली में जमा हो जाती है, जिससे कृषि उपज तो कम हो जाता है साथ नदियों का जल संभरण क्षेत्र भी कम हो जाता है। भीषण वर्षा एवं बाढ़ों से भूमि कटाव की विभीषिका ने भारत में अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रखा है। इसे भारतीय कृषि की पहली श्रेणी का शत्रु माना जाता है।

(ii) **दीर्घकालिक प्रभाव** : बाढ़ से अनियन्त्रित जल फैलाव होता है, जिससे प्रभावित क्षेत्रों में पानी फैलकर तालाबों, कुँओं, झीलों और यहाँ तक कि भूगर्भ जल में मिल जाता है और इस बाढ़ के जल में खेतों की फसलों के अवशेष, कारखानों का कचरा, पशु व मनुष्यों के शव पेड़-पौधों की पत्तियाँ आदि इधर-उधर बिखेर दी जाती हैं जो बहुत लम्बे समय तक सड़ते गलते रहते हैं। इस दूषित जल के उपयोग से मनुष्यों और पशुओं में अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैल जाती हैं। इतना ही नहीं, संयुक्त राष्ट्रसंघ के पर्यावरण सम्मेलन (1972) के लिए भारत सरकार द्वारा तैयार किये गये दस्तावेज में स्वीकार किया गया है कि जल में अवशिष्ट पदार्थ व कूड़ा-कचड़ा सड़ने से कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर ऑक्साइड एवं मीथेन आदि जहरीली गैसें निकलती हैं जो कि वायु को भी प्रदूषित करती हैं परिणामस्वरूप जल व वायु प्रदूषण से सम्पूर्ण पर्यावरण ही दूषित हो जाता है।

दूषित जल में कवक, विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ, कृमि व लेप्टोस्पाइरा आदि सूक्ष्म जीव पलते हैं जो कि रोगजनक होते हैं तथा मनुष्यों और पशुओं में निम्न बीमारियाँ पैदा करते हैं –

सारणी-2

मनुष्यों में प्रदूषित जलजन्य रोग

रोग	रोग के कारक
1. जुकाम, एन्फ्लूएंजा या फ्लू	मिक्सोवाइरस समूह के विषाणु (ए ग्रुप ऑव मिक्सोवाइरस ए० बी० सी०)
2. पायरिया	एण्टअमीबा जिंजेवालिस नामक प्रोटोजोआ
3. सूजाक (गोनोरिया)	नाइसेरिया गोनोरी नामक सूक्ष्मजीव
4. उपदंश (सिफलिस)	सूक्ष्मजीव स्पाइरोकीटा पैलिडा या ट्रेपोनीमा पैलेडियम
5. कालरा	विब्रिओ कालेरी जीवाणु
6. अतिसार (डायरिया)	गार्टनर के जीवाणु
7. कुकुर खाँसी (हुपिंग कफ)	हीमाफिलिस परट्यूसिस, बेसीलस परट्यूसिस जीवाणु
8. ट्यूबरकुलोसिस (टी० बी०)	बैसीलस ऑव ट्यूबरकुलोसिस
9. पोलियो	विषाणु
10. पीतज्वर (येलोफीबर)	स्पायरोकीट जाति का जीवाणु
11. टायफॉयड एव पैराटायफॉयड ज्वर	साल्मोनेला टायफी तथा साल्मोनेला पैराटाइफी
12. पेचिस	दण्डाणुओं तथा अमीबा संक्रमण से
13. अतिसार (डायरिया)	ई० कोलाई जीवाणु
14. अमीबा रुग्णता	एण्टअमीवा हिस्टोलिटिका
15. जियार्डिया रुग्णता	जियार्डिया लेम्बलिया, प्रोटोजोआ
16. फाइलेरिया	फाइलेरिया कृमि
17. टिटैनस	क्लॉस्ट्रीडियम टिटैनी जीवाणु
18. मलेरिया	प्लाज्मोडियम नामक परजीवी जिसका संवहन एनाफिलीज मच्छर करती है
19. प्लेग	बैसिलस पेस्ट्रिस जीवाणु
20. स्माल पॉक्स	वैरिओला वायरस

सारणी-3

पशुओं में प्रदूषित जलजन्य रोग

रोग	कारक
1. नीली जीभ	विषाणु
2. पशुओं का प्लेग	विषाणु
3. पैर तथा मुँह पका	विषाणु
4. ट्रिपैनोसोमता (घोड़ा)	ट्रिपैनोसोमा, प्रोटोजोआ
5. रानीखेत (मुर्गी)	विषाणु
6. चेचक (मुर्गी)	विषाणु
7. कुक्कुट टाइफायड	सोल्मोनेला जीवाणु
8. गर्भस्राव (ब्रूसेलोसिस)	ब्रूसेला जीवाणु
9. एन्थ्रैक्स	बैसिलस ऐन्थैसिस जीवाणु
10. तपेदिक	जीवाणु
11. थनैला	स्ट्रेप्टोकॉकस जीवाणु
12. साल्मोनेतला	साल्मोनेतला डबलिन तथा साल्मोनेतला जीवाणु

उपरोक्त सारणी-2 एवं 3 में दिये गये मानव और पशु रोग, जो कि प्रदूषित जल के सम्पर्क में आने या उपयोग में लाने से होते हैं, चाहे जल भीषण बाढ़ या अन्य किसी कारण से प्रदूषित हुआ हो, उपर्युक्त घातक रोगों के संक्रमण का माध्यम दूषित जल होता है। इनमें से अनेक बीमारियाँ बाढ़ द्वारा प्रदूषित जल से पैदा होकर प्रतिवर्ष हजारों लाखों लोगों की मृत्यु का कारण बनती हैं अतः बाढ़ के तत्कालिक व दीर्घकालिक बीमारियों से बचाव और धन-जन की हानि के बचाव के लिए बाढ़ नियन्त्रण अति आवश्यक है।

बाढ़-नियन्त्रण

बाढ़ जैसी राष्ट्रीय विपत्ति से बचने के लिए तथा बाढ़ पर नियन्त्रण पाने के लिए विशेषज्ञों ने दो प्रकार के उपाय सुझाये हैं—प्रथम सुझाव में वे उपाय हैं जो बाढ़ आने से पहले अर्थात् बाढ़ आने न पाये इसके लिए हैं। दूसरे शब्दों में बाढ़ के आने से पूर्व किये जाने वाले प्रयास। दूसरे उपाय वे हैं जो बाढ़ के बाद अपनाये जाते हैं।

(अ) **बाढ़ से पूर्व के प्रयास**

बाढ़ से पूर्व इस प्रकार के प्रयास किये जाने चाहिए जिससे बाढ़ का खतरा टल जाये, या बाढ़ की गम्भीरता घट जाये । इन्हें **निरोधात्मक उपाय** (Preventive Measures) भी कहते हैं । निरोधात्मक या प्रतिबन्धात्मक प्रयासों में निम्न कार्य करने चाहिये—

1. वृक्ष लगाना, विशेषकर नदी के तटबन्धों पर ।
2. जंगलों का विस्तार करना, विशेषकर नदी-घाटी क्षेत्रों में, तटबन्धों को कटने से रोकने के लिए ।
3. नदी के किनारों को पक्का या मजबूत बनाना ।
4. नदी की धारा की मिट्टी निकालकर उन्हें गहरी करना ।
5. नदियों को रोक कर मजबूत बांध बनाना और बाँधों की प्रतिवर्ष मरम्मत ।
6. नदियों तथा बाँधों से बड़ी-बड़ी नहरें निकालना । इससे वर्षा का पानी, जो अचानक आ जाता है, निकाला जा सकेगा ।
7. नदियों के किनारे पर बसने वाले गाँवों तथा शहरों के तलों को ऊँचा उठाना । यदि ऐसा सम्भव न हो तो उस गाँव के लोगों को दूसरे स्थानों पर स्थानांतरित करना ।
8. विदेशों (जैसे रूस) की तरह अपने देश में भी नदी-प्रबंधन के अन्तर्गत नदियों की तली को खोद कर गहरा करना और नीचे से सभी नदियों को जोड़ देना ताकि अति वृष्टि की दशा में सभी नदियों में जल का समान वितरण हो सके और पानी नदी से बाहर (Over flow) न जाये । इस विधि को नदी तन्त्र (River system) कहते हैं ।
9. सम्भावित बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में मौसम केन्द्रों की स्थापना ताकि बाढ़ आने, तेज वर्षा व तूफान की सूचना 24 घन्टे पूर्व मिल सके ताकि मनुष्यों और पालतू पशुओं को सुरक्षित स्थानों में पहुँचाया जा सके ।

(ब) **बाढ़ के बाद के प्रयास**

ये उपाय बाढ़ के बाद अपनाये जाते हैं ताकि इससे बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के कष्टों को कम किया जा सके अतः इन्हें 'बाढ़ सहायता उपाय अथवा बाढ़ राहत उपाय' की कहते हैं । राहत कार्य दो चरणों में सम्पन्न किये जावे हैं :

1. प्रथम चरण राहत कार्य : इसमें बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों के लोगों से मकान खाली करवाकर उन्हें अन्य स्थानों पर पहुँचाया जाता है । वहाँ पशुओं के चारे, मनुष्यों के लिए भोजन, कपड़ा तथा दवा आदि आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था की जाती है ।

2. द्वितीय चरण या पुनर्वास कार्यक्रम : बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयास किये जाते हैं। इसमें मकान निर्माण के लिए ऋण देना, बीमारी से बचाव के लिए बेहतर चिकित्सा सुविधा देना, कृषकों को बीज, खाद, कृषि उपकरण देना, पूरी तरह से उजड़ें हुए गाँवों को बसाने की योजना बनाना, यातायात व संचार साधन ठीक करना, बेरोजगारों को रोजगार साधन उपलब्ध करना आदि सम्मिलित है।

बाढ़ नियन्त्रण कार्यक्रम की देश में प्रगति

भारत में लगभग प्रतिवर्ष कम या अधिक विनाश के रूप में बाढ़ देश के किसी न किसी क्षेत्र में आती ही रहती है। इससे जन व पशु के साथ ही सर्वाधिक हानि कृषि क्षेत्र की होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है अत: भारत सरकार, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास तथा अन्य संस्थाओं ने बाढ नियन्त्रण के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं जिनके विवरण इस प्रकार हैं—

सरकारी प्रयास

1954 में भारत सरकार ने '**राष्ट्रीय बाढ़ नियन्त्रण नीति**' की घोषणा की। इस नीति ने तीन चरणों में बाढ़ सम्बन्धित क्षेत्रों का सर्वेक्षण व आँकड़े इकट्ठा करना, नदियों के तटबन्ध बनाना, जल निकासी का उचित प्रबन्ध, बाढ़ की पूर्व सूचना देने की व्यवस्था करना, नीचे तल वाले गाँवों को ऊपर उठाना, जलाशयों व बाँधों का निर्माण, भूमि संरक्षण तथा बड़ी नहरों के निर्माण आदि कार्यक्रम सम्मिलित किये। 1954 से 1985 मार्च तक इस नीति के अन्तर्गत बाढ़ों के नियन्त्रण पर लगभग 1,766 करोड़ रुपये व्यय किये गये तथा 1.32 करोड़ हेक्टेयर भूमि (बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र का 39 प्रतिशत) को बचाया गया। 12,265 किलोमीटर लम्बे बाँध तथा 12,809 किलोमीटर लम्बी बहाव नालियाँ बनायी गयी हैं। 304 नगरों और 4,700 गाँवों को बाढ़ के स्तर से ऊँचा किया गया है। गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा अन्य नदियों की बाढ़ों पर नियन्त्रण करने के लिए गंगा बाढ़ नियन्त्रण आयोग, ब्रह्मपुत्र बाढ़ नियन्त्रण आयोग, आयोग उत्तर पश्चिम नदी आयोग, मध्य भारत नदी आयोग तथा केन्द्रीय जल आयोग की स्थापना की गयी है।

जुलाई 1976 में भारत सरकार ने '**राष्ट्रीय बाढ़ आयोग**' की स्थापना की। आयोग ने 1980 में 207 सिफारिशों के साथ अपने प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किये। आयोग के प्रतिवेदन पर अन्तर-मन्त्रालय समितियों एवं राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों ने विचार किया। तदुपरान्त सितम्बर 1981 में भारत सरकार ने मार्गदर्शी सिद्धान्त और अनुदेश तैयार किये। आयोग आज भी कार्यरत है।

देश की 'पंचवर्षीय योजनाओं' ने भी बाढ़ नियन्त्रण क्षेत्र में समय-समय पर काफी कार्य किया है। 'द्वितीय पंचवर्षीय योजना' में बाढ़ नियन्त्रण के विभिन्न कार्यों पर 11 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस योजना में अनेक गाँवों को ऊँचा उठाया गया, 52 शहरों में बाढ़ व भूमि कटाव से सुरक्षा के प्रयास किये गये। बाढ़ की समस्या के अध्ययन, उसके नियन्त्रण के लिए योजनायें व कार्यक्रम बनाने तथा क्रियान्वयन के लिए **राज्य स्तर पर बाढ़ नियन्त्रण परिषदें** स्थापित की गयीं।

तीसरी योजना के अन्त तक बाढ़ नियन्त्रण के विभिन्न कार्यक्रमों पर करीब 185 करोड़ रुपये खर्च किये गये। परिणामस्वरूप 7000 किलोमीटर लम्बे तटबन्ध तथा जल निकासी के लिए 9000 किलोमीटर लम्बी नहरें

बनायी जा सकीं । 178 नगर सुरक्षा योजनायें तैयार की गयीं । परिणामस्वरूप 60 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ के प्रकोप से बचायी जा सकी ।

चौथी योजनावधि में बाढ़ नियन्त्रण पर करीब 175 करोड़ रुपये खर्च हुए तथा 12 हेक्टेयर भूमि को बाढ़ से सुरक्षित किया गया, जिससे इस योजना के अन्त तक कुल मिलाकर 71 लाख हेक्टेयर भूमि को बचाया जा सका । पाँचवी व छठी योजनाओं में क्रमश: 345.27 व 1045.10 करोड़ रुपये बाढ़ नियन्त्रण पर खर्च किए गए, जिससे बाढ़ के विनाशक रूप को कम किया गया । सातवीं योजना में बाढ़ नियन्त्रण पर खर्च के आँकड़ें उपलब्ध नहीं है और आठवीं योजना राजनीतिक भँवर में फँसी है ।

रेड क्रास

विश्व के 149 देशों में रेड क्रास, रेड क्रेसेन्ट समितियाँ, रेड क्रास लीग, रेड क्रास की अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी (आई० सी० आर० सी०) तथा भारतीय रेड क्रेस बाढ़ से पूर्व, बाढ़ आने पर और इसके बाद के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए कार्यरत हैं । रेडक्रास बाढ़ और दूसरी प्राकृतिक आपदाओं की पूर्व सूचना के लिए सर्वेक्षण करती है और मौसम विभाग की भी सहायता लेती है । बाढ़ आने पर बचाव व राहत कार्य पहुँचाती है । रेड क्रास प्रभावित क्षेत्रों में दीर्घकालिक अपनी सेवाएं रुपयों से, डॉक्टरों व अन्य विशेषज्ञों को भेज कर उपलब्ध कराती है, जिससे प्रभावित क्षेत्रों में आवश्यक भोजन, कपड़ा, निवास, स्वास्थ्य तथा समाज कल्याण की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं ।

'भारतीय रेड क्रास' मुख्य रूप से जन सुरक्षा और उनकी सहायता कपड़ा, पुनर्वास, चिकित्सा सुविधा व भोजन उपलब्ध कराकर करता है । अभी बाढ़ से पूर्व सावधानी के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठा सकते हैं ।

मौसम विभाग

बाढ़ की पूर्व सूचना देने के लिए **केन्द्रीय बाढ़ एवं सूचना संगठन** स्थापित किया गया है जिसका मुख्यालय पटना में है । दिल्ली, गौहाटी, माइथान में तीन केन्द्र हैं । वर्षा की पूर्व सूचना हेतु दिल्ली में सुपरकम्प्यूटर भी लगाया गया है, जिससे वर्षा और हर नदी के आवास-क्षेत्र से बहने वाले जल के बीच सम्बन्ध मालूम किया जा सकता है । हालाँकि यह बड़ा जटिल कार्य है और इससे क्रियात्मक विज्ञान की जरूरत है । वैसे देश में इन्सेट और सुपरकम्प्यूटर के माध्यम से आँधी, तूफान, वर्षा के सम्बन्ध में सफलतापूर्वक पूर्व सूचना प्रतिदिन प्राप्त होती रहती है । फिर भी हमें प्रतिवर्ष बाढ़ की विभीषिका का सामना करना पड़ता है । आवश्यकता है जनमानस में बाढ़ के आने के कारणों और सुरक्षा उपायों की जानकारी का प्रचार-प्रसार । ● ●

रेगिस्तानों का प्रसार पर्यावरण के सन्दर्भ में

○डॉ० विनय कुमार○

रेगिस्तान शब्द याद आते ही याद आ जाता है एक जलरहित, तीव्र झुलसन वाला, वायु द्वारा निघर्षित तथा दूर-दूर तक छायाहीन व वनस्पति रहित क्षेत्र, अर्थात् वहाँ निगाहें उठाकर देखने पर रेत ही रेत दिखलायी पड़ता है। किन्तु कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी झाड़ियाँ और कँटीले, सूखे, पत्तियोंरहित वृक्ष क्षेत्र की अनुर्वरता को चुनौती देते नजर आते हैं।

सम्पूर्ण पृथ्वी के क्षेत्रफल का लगभग 35 प्रतिशत भाग रेगिस्तान से प्रभावित है। यह क्षेत्र मुख्य रूप से शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रत्येक वर्ष वर्षा की मात्रा में हुई कमी तथा दोषपूर्ण जल-वितरण के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र का प्रसार हो रहा है। रेगिस्तान के निकट की उपजाऊ भूमि बहुधा इसकी चपेट में आ जाती है। ऐसी कृषि भूमि में जहाँ सिंचाई का एकमात्र स्रोत वर्षा का जल होता है, वहाँ रेगिस्तान के फैलने का खतरा सर्वाधिक होता है। वर्षा न होने की स्थिति में फसलें बर्बाद हो जाती हैं, मवेशी मर जाते हैं, जल के स्रोत सूख जाते हैं जिससे ऐसे क्षेत्रों में मानव का रहना असम्भव हो जाता है।

भारत व विश्व के अनेक देशों के प्राचीन साहित्य में बड़े-बड़े रेगिस्तानों को पार कर दूर देशों तक व्यापार करने तथा दूसरे देशों को जीतने के लिये ले जायी गयी सेनाओं का वर्णन मिलता है। उस समय इस अलंघ्य क्षेत्र को पार करने के लिये ऊँटों के बड़े-बड़े काफिले चला करते थे। 1930 तक ऊँट ही रेगिस्तान के सर्वेक्षण के प्रमुख साधन थे। उसके बाद ही विभिन्न वाहनों, हवाई सर्वेक्षणों तथा उपग्रह के द्वारा सुदूर संवेदनों के माध्यमों से इस बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की गई। उपलब्ध जानकारी के आधार पर सर्वप्रथम आस्ट्रिया के **डॉ० ब्लादीमीर कोपेन** ने 1918 ई० में बताया कि विश्व के 1456 लाख वर्ग किमी० भू-भाग का 28 प्रतिशत क्षेत्र 250 मिमी० से कम वर्षा वाला तथा 14 प्रतिशत 250-500 मिमी० वर्षा वाला शुष्क क्षेत्र है। **मैकगिनीज** (1968) ने सम्पूर्ण शुष्क क्षेत्र को वर्षा की मात्रा के आधार पर तीन क्षेत्रों में बाँटा—(I) 60-100 मिमी० वर्षा वाला क्षेत्र, (II) 100-250 मिमी० वाला क्षेत्र और (III) 250-500 मिमी० वाला क्षेत्र। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित **नैरोबी सम्मेलन** (1977) में विश्व के सम्पूर्ण मरु प्रदेश के लिये एक मानचित्र तैयार किया गया जिसके अनुसार आस्ट्रेलिया के 75 प्रतिशत, अफ्रीका के 34 प्रतिशत, एशिया के 31 प्रतिशत, अमेरिका के 19 प्रतिशत तथा यूरोप के 2 प्रतिशत भाग में रेगिस्तान के प्रसार का आसन्न संकट है। विश्व में प्रतिवर्ष आधे ब्रिटेन के क्षेत्रफल के बराबर धरती रेगिस्तान में बदल जाती है और 85 करोड़ से अधिक लोग अकाल की छाया में जीते हैं। इसके फलस्वरूप विश्व में प्रतिवर्ष 2 करोड़ 60 लाख डॉलर की क्षति कृषि उत्पादन में हो रही है। साथ ही पर्यावरण में असंतुलन से कीमती प्राणियों व वनस्पतियों के लुप्त हो जाने का खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका के विभिन्न शहरों में देहाती क्षेत्रों से आये लोग मर गये हैं। भारत में रेगिस्तान से प्रभावित क्षेत्रों के लोग, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से बस गये हैं।

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

रेगिस्तानों का प्रसार पर्यावरण के सन्दर्भ में

○डॉ० विनय कुमार○

रेगिस्तान शब्द याद आते ही याद आ जाता है एक जलरहित, तीव्र झुलसन वाला, वायु द्वारा निर्घर्षित तथा दूर-दूर तक छायाहीन व वनस्पति रहित क्षेत्र, अर्थात् वहाँ निगाहें उठाकर देखने पर रेत ही रेत दिखलायी पड़ता है। किन्तु कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी झाड़ियाँ और कँटीले, सूखे, पत्तियोंरहित वृक्ष क्षेत्र की अनुर्वरता को चुनौती देते नजर आते हैं।

सम्पूर्ण पृथ्वी के क्षेत्रफल का लगभग 35 प्रतिशत भाग रेगिस्तान से प्रभावित है। यह क्षेत्र मुख्य रूप से शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रत्येक वर्ष वर्षा की मात्रा में हुई कमी तथा दोषपूर्ण जल-वितरण के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र का प्रसार हो रहा है। रेगिस्तान के निकट की उपजाऊ भूमि बहुधा इसकी चपेट में आ जाती है। ऐसी कृषि भूमि में जहाँ सिंचाई का एकमात्र स्रोत वर्षा का जल होता है, वहाँ रेगिस्तान के फैलने का खतरा सर्वाधिक होता है। वर्षा न होने की स्थिति में फसलें बर्बाद हो जाती हैं, मवेशी मर जाते हैं, जल के स्रोत सूख जाते हैं जिससे ऐसे क्षेत्रों में मानव का रहना असम्भव हो जाता है।

भारत व विश्व के अनेक देशों के प्राचीन साहित्य में बड़े-बड़े रेगिस्तानों को पार कर दूर देशों तक व्यापार करने तथा दूसरे देशों को जीतने के लिये ले जायी गयी सेनाओं का वर्णन मिलता है। उस समय इस अलंघ्य क्षेत्र को पार करने के लिये ऊँटों के बड़े-बड़े काफिले चला करते थे। 1930 तक ऊँट ही रेगिस्तान के सर्वेक्षण के प्रमुख साधन थे। उसके बाद ही विभिन्न वाहनों, हवाई सर्वेक्षणों तथा उपग्रह के द्वारा सुदूर संवेदनों के माध्यमों से इस बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की गई। उपलब्ध जानकारी के आधार पर सर्वप्रथम आस्ट्रिया के डॉ० **ब्लादीमीर कोपेन** ने 1918 ई० में बताया कि विश्व के 1456 लाख वर्ग किमी० भू-भाग का 28 प्रतिशत क्षेत्र 250 मिमी० से कम वर्षा वाला तथा 14 प्रतिशत 250-500 मिमी० वर्षा वाला शुष्क क्षेत्र है। **मैकगिनीज** (1968) ने सम्पूर्ण शुष्क क्षेत्र को वर्षा की मात्रा के आधार पर तीन क्षेत्रों में बाँटा—(I) 60-100 मिमी० वर्षा वाला क्षेत्र, (II) 100-250 मिमी० वाला क्षेत्र और (III) 250-500 मिमी० वाला क्षेत्र। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित **नैरोबी सम्मेलन** (1977) में विश्व के सम्पूर्ण मरु प्रदेश के लिये एक मानचित्र तैयार किया गया जिसके अनुसार आस्ट्रेलिया के 75 प्रतिशत, अफ्रीका के 34 प्रतिशत, एशिया के 31 प्रतिशत, अमेरिका के 19 प्रतिशत तथा यूरोप के 2 प्रतिशत भाग में रेगिस्तान के प्रसार का आसन्न संकट है। विश्व में प्रतिवर्ष आधे ब्रिटेन के क्षेत्रफल के बराबर धरती रेगिस्तान में बदल जाती है और 85 करोड़ से अधिक लोग अकाल की छाया में जीते हैं। इसके फलस्वरूप विश्व में प्रतिवर्ष 2 करोड़ 60 लाख डॉलर की क्षति कृषि उत्पादन में हो रही है। साथ ही पर्यावरण में असंतुलन से कीमती प्राणियों व वनस्पतियों के लुप्त हो जाने का खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका के विभिन्न शहरों में देहाती क्षेत्रों से आये लोग मर गये हैं। भारत में रेगिस्तान से प्रभावित क्षेत्रों के लोग, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से बस गये हैं।

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

विश्व में रेगिस्तान का प्रसार

संसार में रेगिस्तान बिखरे हुए नहीं हैं, वरन् वे दो असतत पट्टियों में फैले हुए हैं। एक उत्तरी गोलार्द्ध में और दूसरा दक्षिणी गोलार्द्ध में। ये मोटे तौर पर कर्क रेखा तथा मकर रेखा के साथ-साथ पाये जाते हैं। ये पृथ्वी की सतह का 1/3 भाग घेरे हुए हैं, जबकि सतह के 0.7 प्रतिशत भाग में रेत के टीले पाये जाते हैं। रेगिस्तान का सबसे विशाल क्षेत्र पृथ्वी के चारों ओर 30° दक्षिण अक्षांशों के बीच दो चौड़ी पट्टी में पाये जाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में अफ्रीका का सहारा, अरेबिया, सीरिया- जोर्डन, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, पाकिस्तान और भारत के मरुस्थल हैं जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी अफ्रीका का कालाहारी, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी अर्जेन्टाइना के मरुस्थल सम्मिलित हैं।

मुख्य रूप से रेगिस्तान दो प्रकार के होते हैं—गर्म और ठण्डे। राजस्थान का रेगिस्तान गर्म तथा अंत:स्थलीय प्रकार का है। किसी क्षेत्र या स्थान को कितनी मात्रा में वर्षा का पानी मिलता है, (वर्षण सूचकांक) के आधार पर भारतीय रेगिस्तान को मुख्य रूप से शुष्क तथा अर्द्धशुष्क भागों में विभाजित किया गया है। भारत का 12.13 प्रतिशत क्षेत्रफल शुष्क क्षेत्र में और 29.13 प्रतिशत क्षेत्रफल अर्द्धशुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। विस्तृत तथ्य सारणी-2 में वर्णित हैं।

भारत में राजस्थान प्रदेश में मरुभूमि का क्षेत्रफल 1.91 लाख वर्ग किमी० है जो देश की कुल मरुभूमि का 61 प्रतिशत है। विशेष रूप से राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र के 12 जिले इससे सर्वाधिक ग्रस्त हैं। गुजरात व कच्छ का मरुस्थल भी एक विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। इन क्षेत्रों में जमाव बिन्दु के नीचे तापक्रम जहाँ दिसम्बर व जनवरी माह में पाया जाता है वहीं जून में यह बढ़कर 50°-55° सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत 37.5 सेमी० है तथा वायु का औसत वेग 16 किमी० प्रति घंटे से अधिक होता है। राजस्थान में रेत के टीलों की लम्बाई 100 मीटर से अधिक देखी गयी है। जब यहाँ भीषण आँधियाँ चलती हैं, तो रेत के टीलों का स्थानान्तरण समतल मैदानी क्षेत्रों तक हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण जन जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है।

रेगिस्तान के निर्माण और विस्तार के कारण

वैज्ञानिकों का मानना है कि पुरानी दुनिया के अधिकांश रेगिस्तान मानव निर्मित हैं अर्थात् उनके बनने में मनुष्य के विनाशकारी कार्यकलाप विशेष रूप से उत्तरदायी हैं, जलवायु तो केवल ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करती है जिनके परिणामस्वरूप ये परिवर्तन सम्भव होते हैं। सहारा के विशाल मरुस्थल प्रदेश में ऊँट और बकरियों का प्रवेश तथा चरना दो ऐसे कारण थे, जिनसे मरुभूमि की मूल वनस्पतियों पर दुष्प्रभाव पड़ा है। सहारा से जुड़े एक छोटे से क्षेत्र पर जानवरों के चरने व प्रवेश पर रोक लगा देने से बड़े उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये हैं। उस क्षेत्र की लुप्त-प्राय वनस्पतियाँ पुन: उग आयीं तथा क्षेत्र पहले जैसा हरा-भरा हो गया। भारतीय विशेषज्ञों के अनुसार तथा पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि आज से लगभग 75,000 वर्ष पहले थार के रेगिस्तानी क्षेत्र में प्रचुर वर्षा होती थी। यहाँ कई झीलें, नदियाँ और विशाल वन थे। समुद्र का विस्तार भी इस क्षेत्र में था। सांभर, पचपदरा की झीलें तथा ऋग्वैदिक कालीन सरस्वती नदी का अस्तित्व सिद्ध हो चुका है। बड़े-बड़े विशाल डायनोसॉर के कंकाल इस क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पन्नता की पुष्टि करते हैं। अनुमान किया जाता है कि राजस्थान में

रेगिस्तान का प्रसार एकाएक न होकर सतत विनाशकारी प्रक्रियाओं के फलस्वरूप सम्भव हुआ है। इसमें मुख्य रूप से तीन कारक उत्तरदायी हैं—

(1) **जलवायु सम्बन्धी क्रियायें**

वर्षा, ताप, नमी के पारस्परिक सम्बन्धों के बिगड़ने से।

(2) **प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से**

वनों के नष्ट होने, भूमि क्षरण, भू-क्षारीयता के बढ़ने, भू-जल का अत्यधिक दुरूपयोग, वाष्पीकरण, जलाक्रांति, मिट्टी की नमी, कार्बनिक खादों की अनुपलब्धता तथा अखाद्य घासों के विकास के परिणामस्वरूप।

(3) **भौतिक, जैविक एवं खनिज सम्बन्धी भूमि परिवर्तन**

संवेदनशील तथा प्रभावित क्षेत्रों में मामूली सा परिवर्तन मानसून तथा जलवायु कारकों को प्रभावित कर सकता है।

उपर्युक्त प्रमुख कारणों के सहकारक अन्य कारण भी हैं जैसे—मनुष्य और पशुओं की जनसंख्या में व्यापक वृद्धि, वनों में लकड़ी की व्यापक कटाई, कार्बनिक पदार्थों की प्रभावित क्षेत्रों में अनुपलब्धता, पर्यावरण सन्तुलन की ओर ध्यान न देकर कृषि कार्य करना, भूमि का दोषपूर्ण प्रबन्ध, प्रशासनिक स्तर पर विभिन्न विभागों में समन्वय का अभाव, दीर्घकालिक नीति की कमी, मरुभूमि के अध्ययन का संकुचित क्षेत्र, विभिन्न मरुभूमि सुधार कार्यक्रमों में स्थानीय लोगों का सहयोग न लेना आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जो एक हद तक मरुभूमि के विस्तार को बढ़ा सकते हैं।

जलवायु सम्बन्धी तथा भू-आकृतिक कारकों के साथ ही मरुस्थलीकरण का एक प्रमुख कारक है रेगिस्तान में मानव जनसंख्या तथा उसके पालतू पशुओं की संख्या में और उनके कार्यकलापों में भारी बढ़ोत्तरी। लगभग 290000 वर्ग किमी० क्षेत्रफल में फैले थार मरुस्थल में जनसंख्या वृद्धि ने वहाँ के पर्यावरण के सन्तुलन को डगमगा दिया है। राजस्थान के रेगिस्तानी प्रदेश में 1901 में मानव जनसंख्या केवल 34.2 लाख थी वह सन् 1981 में लगभग एक करोड़ तक पहुँच गई है। इस प्रकार से पशुओं विशेषकर भेड़ों व बकरियों की संख्या भी कई गुना बढ़ गई है जिसका दुष्प्रभाव यह है कि वनस्पतियाँ नष्ट होती जा रही हैं तथा मरुभूमि का विस्तार हो रहा है।

रेगिस्तान में निर्मित आकृतियाँ

(1) **अपवाहन बेसिन या वात गर्त**

पवन द्वारा असंगठित तथा ढीले कणों के उड़ा लिये जाने से निर्मित गर्त को अपवाहन बेसिन कहते हैं। पवनों द्वारा इनके निर्मित होने के कारण इन्हें पवन या वात गर्त भी कहते हैं। इनका आकार प्रायः तश्तरीनुमा होता है। यह प्रायः सहारा, कालाहारी, मंगोलिया तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी शुष्क भागों में बहुतायत से पाये जाते हैं।

(2) **इन्सेलवर्ग**

जर्मन भाषा के इस शब्द का अर्थ पर्वत, द्वीप या द्वीपीय पर्वत होता है। मरुस्थलों में शैलों के अपक्षय तथा अपरदन के कारण कोमल शैल आसानी से टूट जाती है लेकिन कठोर शैल के अवशेष भाग ऊँचे-ऊँचे टीलों के रूप में बच जाते हैं। इन्हीं आकृतियों को इन्सेलवर्ग कहते हैं। यह प्रायः गुम्बदाकार हुआ करते हैं। इनका निर्माण ग्रेनाइट या नीस नामक चट्टानों के अपरदन तथा अपक्षय द्वारा होता है।

(3) **छत्रक शिला**

मरुस्थलीय भागों में यदि कठोर शैल के ऊपरी आवरण के नीचे कोमल शैल लम्बवत् रूप में मिलती हैं तो उस पर पवन के अपघर्षण के प्रभाव से विचित्र प्रकार के स्थलरूप का निर्माण होता है। तीव्र पवन के साथ रेत तथा धूलिकणों की प्रचुरता सतह से 6 फीट की ऊँचाई तक ही होती है। ऊपर जाने पर क्रमशः इनकी मात्रा कम हो जाती है। परिणामस्वरूप पवन द्वारा चट्टान के निचले भाग में अत्यधिक अपघर्षण द्वारा उसका आधार कटने लगता है, जबकि उसका ऊपरी भाग अप्रभावित रहता है। इस तरह एक छतरीनुमा स्थलरूप का निर्माण होता है, जिसे छत्रक शिला कहते हैं। सहारा में इसे गारा तथा जर्मनी में पिट्जफेल्सन नाम से जाना जाता है।

(4) **भू-स्तम्भ**

शुष्क प्रदेश में जहाँ पर असंगठित तथा कोमल शैल के ऊपर कठोर तथा प्रतिरोधी शैल का आवरण होता है वहाँ पर इस आवरण के कारण नीचे के कोमल शैल का अपरदन नहीं हो पाता है। परन्तु समीपी कोमल चट्टान का अपरदन होता रहता है, जिस कारण अगल-बगल की शैलें कट कर टूट जाती हैं और कठोर शैल का आवरण भाग एक स्तम्भ के रूप में सतह पर दिखाई पड़ता है। इसे भू-स्तम्भ कहा जाता है।

(5) **ज्यूजेन**

मरुस्थली भाग में यदि कठोर तथा कोमल शैलों की परतें ऊपर-नीचे एक दूसरे के समानान्तर होती हैं तो अपक्षय तथा वायु द्वारा अपरदन के कारण विचित्र प्रकार के स्थलरूपों का निर्माण हो जाता है, जिसका ऊपरी भाग कम चौड़ा तथा निचला भाग अधिक चौड़ा होता है। परन्तु उन स्थलरूपों के ऊपरी भाग पर कठोर शैल का आवरण होता है तथा उनका ऊपरी भाग समतल होता है। ऐसे स्थलरूपों को ज्यूजेन कहा जाता है। इनका निर्माण अपक्षय तथा विशेषक अपरदन के फलस्वरूप होता है। ये 90-150 फीट तक की ऊँचाई के होते हैं।

(6) **यारडंग**

इसका निर्माण पवन के अपघर्षण द्वारा होता है। इनकी ऊँचाई 20 फीट तथा चौड़ाई 30-120 फीट तक होती है। कठोर शैलों के मध्य कोमल शैलों के अपरदित होकर उड़ जाने के कारण कठोर चट्टानों के भाग खड़े रह जाते हैं। इन शैलों के पार्श्व में पवन द्वारा कटाव होने से नालियाँ बन जाती हैं। इस तरह के स्थलरूप को यारडंग कहते हैं। ये प्रायः पवन की दिशा से समान्तर रूप में होते हैं।

(7) ड्राइकान्तर

पथरीले मरुस्थलों में शिलाखण्डों पर वायु द्वारा कई तरह की आकृतियाँ बन जाती हैं। पवन के कई दिशाओं से चलने पर इन शिलाखण्डों में चतुष्फलक आकृति बनती है, जिसका एक फलक भू-पृष्ठ पर तथा शेष तीन फलक बाहर की ओर होते हैं। इस प्रकार पार्श्वों वाले त्रिकोणाकार टुकड़े को ड्राइकान्तर कहते हैं।

(8) जालक या जालीदार शिला

जब चट्टानों के विभिन्न भागों में कठोरता भिन्न-भिन्न होती है तो कोमल भाग अपघर्षण द्वारा उड़ जाते हैं, परन्तु कठोर भाग यथास्थान रहते हैं फलस्वरूप शैल भाग में जाली का निर्माण होने से इस प्रकार की शिला का निर्माण होता है।

(9) पुल तथा खिड़की

जालीदार शिला में पवनोन्मुखी भाग का छिद्र अपरदन के कारण शैल के आर-पार हो जाता है फलस्वरूप चट्टान का कटाव नीचे तक हो जाता हैं। परन्तु ऊपरी भाग छत के रूप में विद्यमान रहता है जो मेहराब की आकृति का निर्माण करता है। इसे पुल भी कहा जाता है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त पवन को गति में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न होने से परिवहित धूल एवं बालू के सूक्ष्म कणों का तत्काल निक्षेपण हो जाता है। पवनकृत इन निक्षेपों को वातोढ़-निक्षेप कहते हैं। ये निक्षेप प्रायः अस्थाई होते हैं एवं पवन के पुनः प्रवाहित होने से ये पुनः अन्यत्र परिवहित होते हैं। ये निक्षेप मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं—

(1) टिब्बा

सतही अनियमितताओं एवं रूक्षीय अवरोधों जैसे—वृक्ष, पत्थर, झाड़ियों द्वारा पवन की गति अवरुद्ध होने से बालू का जमाव होता है, जिससे अवरोध निर्मित होता है तथा क्रमशः और अधिक बालू जमा होती जाती है। इस तरह कालान्तर में प्रायः गोलाकार टीलों का निर्माण होता है। इन्हीं टीलों को टिब्बा कहते हैं। ये 30 से 300 मीटर की ऊँचाई तक के पाये जाते हैं। ये टिब्बे मुख्यतः मरुस्थलीय क्षेत्रों में, झील एवं समुद्रों के तटीय क्षेत्रों में तथा शुष्क जलवायु वाले बाढ़-कृत मैदानों में ही पाये जाते हैं।

वनस्पतियों का अवरोध न होने से ये टिब्बे पवन के सतत प्रवाह की दिशा में स्थानान्तरित हो जाते हैं। यह गति 30 मीटर प्रति वर्ष तक हो सकती है। टिब्बों के इस तरह से स्थान परिवर्तन के कारण उपजाऊ भूमि, जंगल एवं बस्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

(2) चापाकार टिब्बा

मरुस्थली क्षेत्रों में छोटे टिब्बे बहुधा चापाकार होते हैं। इन्हें बरकान कहते हैं। चापाकार टिब्बों की ऊँचाई प्रायः 2-15 मीटर तक होती है। कभी-कभी इसकी ऊँचाई तथा चौड़ाई इससे कहीं अधिक होती है। मरुस्थलों में ये चापाकार टिब्बे पवन की दिशा दर्शाते हैं।

लोएस

पवन द्वारा परिवहित धूल मरुस्थलों के किनारों या पर्वतों की ढालों पर जमा होती है। इस तरह विशेष प्रकार के अतिसूक्ष्मकणिक जमावों को लोएस कहते हैं। इनका रंग हल्के पीले से हल्का भूरा तक होता है। ये हल्की तथा सरन्ध्री होती हैं। इनके कणों का आकार 0.005 से 0.01 मिमी० व्यास का होता है। लोएस में कार्बोनेशियस यौगिक भी यथेष्ट मात्रा में रहते हैं। ये एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं तथा दीवार के सदृश दिखायी देते हैं। लोएस के जमाव प्रायः कुछ मीटर से लेकर 100 मीटर से भी अधिक मोटाई के होते हैं। लोएस मुख्यतः चीन, मध्य एशिया तथा संयुक्त राज्य के पश्चिमी प्रदेशों में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। प्रायः लोएस के जमाव अधिक उपजाऊ होते हैं।

बढ़ते रेगिस्तानों की रोकथाम

संसार की शस्य श्यामला वसुन्धरा को मरुस्थल के प्रसार से बचाने के प्रयासों में कोई विशेष सफलता नहीं मिली है और रेगिस्तान विश्व के अनेक बड़े-बड़े भू-भागों पर अपनी चादर फैलाते जा रहे हैं। 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम' की रिपोर्ट में कहा गया है कि धरती को रेगिस्तान के प्रभाव से बचाने के लिये अपेक्षित धनराशि उपलब्ध न होने से इन प्रयासों को जबरदस्त आघात पहुँचा है। इससे प्रभावित देश इस इस समस्या की भयावहता के प्रति जागरूक नहीं हुए हैं। जब तक कोई सुनियोजित दीर्घकालीन नीति नहीं निर्धारित की जाती, केवल हल्के तथा अधूरे प्रयासों से धरती को नहीं बचाया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र के इस संगठन ने मरुभूमि के प्रसार को रोकने के लिए पहला सम्मेलन सितम्बर 1977 में नैरोबी (अफ्रीका) में आयोजित किया था, लेकिन कम ही संख्या में देशों ने इस संगठन से सम्पर्क स्थापित किया और उनमें भी केवल कुछ ने ही इस सम्बन्ध में अपनी राष्ट्रीय नीतियाँ तय कीं। इस कार्यक्रम के लिए दान देने वाले देशों ने भी वृक्षारोपण की दीर्घकालीन नीतियों को अपना समर्थन देने के बजाय अस्थाई उपायों के लिये ही मदद दी, जिससे यह समस्या उत्तरोत्तर गम्भीर होती जा रही है। संगठन ने कहा है कि इस समस्या के व्यावहारिक समाधान के लिए विपुल धनराशि तथा उतने ही शक्तिशाली मानवीय प्रयासों की आवश्यकता है। रेगिस्तान के फैलाव को रोककर 4.5 अरब डॉलर की क्षति को रोका जा सकता है।

भारत में रेगिस्तान के विस्तार को रोकने के लिए जागृति का इतिहास बहुत पुराना है। आज से 261 वर्ष पहले 1730 में जब **औरंगजेब** का शासन था तब जोधपुर के महाराजा **अभयसिंह** ने अपना महल बनाने के लिए बिस्नोइयों के खेजड़ली गाँव से खेजड़ी के हरे वृक्ष काटने का हुक्म दिया। उसके आदमी कुल्हाड़ियाँ लेकर गाँव में पहुँचे तो पुरुष ही नहीं औरतें भी हरे वृक्षों लिपट गयीं। राजा के आदमियों ने पेड़ों के साथ-साथ 69 औरतों और 294 पुरुषों की गर्दनें भी काट डालीं। महाराजा को खबर मिली तो वह दौड़ा आया और वृक्षों को काटने से अपने आदमियों को रोका। बिस्नोइयों के गुरु **जांबोजी** के उपदेशों में वृक्षों और वन्य जीवों की सुरक्षा भी शामिल है। बिस्नोई पेड़ों को अपने ही प्राण मानते हैं।

भारत के स्वतन्त्र होने पर संविधान निर्माताओं ने भी पर्यावरण की सुरक्षा को संविधान में शामिल किया था। 1959 ई० में भारत सरकार द्वारा जोधपुर में 'केन्द्रीय रुक्ष अनुसंधान संस्थान' की स्थापना होने से रेगिस्तान की रोकथाम, पशुपालन तथा खाद्यान्नों की विभिन्न जातियों और पौधों के विषय में नये-नये अनुसंधान किये जाने लगे। विभिन्न बीजों-फलों और पशुओं की कई नई नस्लों का विकास भी इस संस्थान द्वारा हुआ। इस संस्थान का

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य नये-नये अनुसंधानों को प्रयोगशाला से खेत-खलिहान और मैदानों तक लाने में रहा है। राजस्थान में निर्मित 'इन्दिरा गाँधी नहर' का निर्माण भी रेगिस्तानी क्षेत्र को हरा-भरा करने में मील का पत्थर साबित होगा।

राजस्थान सरकार द्वारा 1953 में सर्वप्रथम 'वन संरक्षण अधिनियम' पारित किया गया। 1955 के 'राजस्थान काश्तकारी अधिनियम' द्वारा भी वृक्षों की सुरक्षा की व्यवस्था की गई, परन्तु 1972 के स्टाकहोम (स्वीडेन) सम्मेलन के बाद इस दिशा में गम्भीरता से विभिन्न कार्य सरकार द्वारा किये गये। 1972 में 'राष्ट्रीय पर्यावरण नियोजन और समन्वयन समिति' का गठन तथा 1981 में 'वायु प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण अधिनियम' लागू किया। 1985 में 'पर्यावरण व वन मंत्रालय' की स्थापना तथा 1986 में पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया। विभिन्न कानूनों द्वारा वनों की कटाई में कमी, वृक्षारोपण के प्रति उत्साह तथा पर्यावरण के सन्दर्भ में सामान्य जनता में जागरूकता बढ़ी है, फिर भी इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों को गति देनी होगी। यहाँ कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं—

(1) रेगिस्तानी क्षेत्र में उपयुक्त पौधों की जातियों का विकास तथा रोपण। राजस्थान सरकार के वन विभाग द्वारा (अकेसिया, यूफॉरबिया) आदि जातियों का विकास एक उल्लेखनीय उपलब्धि है।

(2) वनों की कटाई पर प्रभावी नियन्त्रण।

(3) रेगिस्तानी क्षेत्र में जनसंख्या प्रसार में कमी।

(4) पशुओं की उपयुक्त तथा आवश्यक संख्या को प्रोत्साहित करना तथा अवैध चराई पर रोक।

(5) पशुओं के लिए प्रभावी चारा बैंकों की स्थापना।

(6) इमारती लकड़ी व ईंधन हेतु वैकल्पिक व्यवस्था करना।

(7) रेगिस्तान की रोकथाम हेतु अध्ययन व उसकी जानकारी को सामान्य जनता तक पहुँचाने की व्यवस्था करना।

(8) वृक्षारोपण आंदोलन को उस क्षेत्र की संस्कृति, जीवन दर्शन में शामिल कर क्षेत्र की जनता का सहयोग लेना।

(9) रेगिस्तान का फैलाव चूँकि लोगों के कार्यकलापों से होता है अतः इसकी रोकथाम भी उनके संकल्प और उनकी प्रतिबद्धता से ही सम्भव बनाना।

(10) भूमि का बेहतर उपयोग, कृषि की उन्नत व्यवस्था तथा पानी के उचित संरक्षण द्वारा रेगिस्तानों के प्रसार को रोकना। ● ●

सारणी-1

विश्व के प्रमुख मरुस्थलों का विस्तार

क्रम सं०	मरुस्थल का नाम	क्षेत्रफल (वर्ग कि० मी०)	सम्मिलित देश
1.	सहारा	8,400,000	अल्जीरिया, चाउ, लीबिया, माली, मोरीतानिया, नाइजर, सूडान, ट्यूनीशिया, मिस्र, मोरक्को
2.	आस्ट्रेलियन	1,550,000	आस्ट्रेलिया
3.	अरेबियन	1,300,000	दक्षिणी अरेबिया, सऊदी अरब, यमन, अरबलखाली सीरिया, नफूद
4.	गोबी	1,040,000	मंगोलिया, चीन
5.	कालाहारी	520,000	वोत्सवाना
6.	तकला मकन	320,000	सीक्यांग, चीन
7.	सोनोरन	310,000	अरीजोना, कैलिफोर्निया (यू० एस० ए०), मैक्सिको
8.	नामिब	310,000	नामीबिया (द० पू० अफ्रीका)
9.	काराकुम	270,000	तुर्कमानिस्तान (सोवियत संघ)
10.	थार	260,000	भारत व पाकिस्तान
11.	सोमाली	260,000	सोमालिया
12.	आटाकामा	180,000	उत्तरी चिली
13.	काजिल-कुम	180,000	उज्बेकिस्तान (सोवित संघ)
14.	दश्त-ऐ-लुत	52,000	पूर्वी ईरान
15.	मोजाब	35,000	दक्षिणी कैलिफोर्निया
16.	देसिर्तो-डे-सेचुरा	26,000	उत्तर-पश्चिम पेरू

सारणी-2

भारत का रेगिस्तानी क्षेत्र

क्रम सं०	राज्य	सम्पूर्ण शुष्क क्षेत्र (वर्ग कि० मी०)	सम्पूर्ण शुष्क क्षेत्र का %	प्रतिशत भाग		प्रतिशत जनसंख्या	
				शुष्क क्षेत्र	अर्द्ध शुष्क क्षेत्र	शुष्क क्षेत्र	अर्द्ध शुष्क क्षेत्र
1.	राजस्थान	1,91,650	61	57.42	36.67	33.47	58.37
2.	गुजरात	62,180	20	33.72	47.50	11.18	60.56
3.	पंजाब	14,510	5	28.60	75.40	20.11	64.02
4.	हरियाणा	12,840	4	29.32	59.77	19.70	67.36
5.	महाराष्ट्र	1,280	0.4	0.42	61.17	0.49	64.69
6.	कर्नाटक	8,570	3	4.27	72.60	3.14	75.72
7.	आंध्र प्रदेश	21,550	7	7.18	44.66	4.99	41.89
8.	जम्मू और काश्मीर	—	—	31.13	6.22	1.64	0.33
9.	उत्तर प्रदेश	—	—	—	21.73	—	28.26
10.	मध्यप्रदेश	—	—	—	13.38	—	14.19
11.	तमिलनाडु	—	—	—	65.54	—	60.48

सूखा और बाढ़ : एक ही सिक्के के दो पहलू

○ विजय जी ○

अन्य प्राकृतिक विपदाओं की तरह ही सूखे और बाढ़ से भी अपने देश व दुनिया के अन्य भागों में बहुत बड़ी जनसंख्या प्रभावित होती है। लेकिन अन्य प्राकृतिक विपदाओं के विपरीत सूखे और बाढ़ से बचाव के लिए समय ज्यादा उपलब्ध होता है। उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों का सहारा लेकर तथा प्रशासनिक सूझ-बूझ से इन आपदाओं का बखूबी सामना किया जा सकता है।

सूखा और बाढ़ अन्य प्राकृतिक आपदाओं से एक बात में और भी भिन्न हैं। अन्य प्राकृतिक आपदाओं की निर्माण प्रक्रिया में मनुष्य का हाथ नगण्य होता है। भूकम्प, तूफान, ज्वालामुखी विस्फोट जैसी आपदाएँ प्राकृतिक कारणों से जन्म लेती हैं। इनके विपरीत सूखे और बाढ़ के लिए प्राकृतिक शक्तियाँ तो उत्तरदायी हैं ही, मानवीय भूलें भी कम उत्तरदायी नहीं हैं। यही कारण है कि अतीत में सूखे और बाढ़ जैसी विपदायें जहाँ कभी-कभी ही आया करती थीं, अब ये स्थायी मेहमान का रूप धारण कर चुकी हैं। प्राय: प्रत्येक वर्ष देश के किसी न किसी भाग में सूखा या बाढ़ की स्थिति बन ही जाती है।

सूखा और बाढ़ : आवृत्ति बढ़ रही है

सूखा और बाढ़ हमारे देश के लिए कोई नई बात नहीं है। रामायण काल में एक बहुत बड़े सूखे का वर्णन आता है जब राजा जनक ने वर्षा करवाने के लिए रानी के साथ सोने का हल चलाया था और तभी सीता प्राप्त हुई थीं। पहले इतिहास में ऐसी आपदाएँ शताब्दियों में हुआ करती थीं, लेकिन औद्योगीकरण और नई खेती के विकास के बाद पूरे भूमण्डल का पर्यावरण आमूल चूल बदल गया है। इन पर्यावरणीय परिवर्तनों का सूखे और बाढ़ जैसी आपदाओं से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। इस तरह की जो घटनाएँ पिछली शताब्दियों में सैकड़ों साल में होती थीं अब हर दस साल, पाँच साल और कहीं-कहीं तो एक दो साल के अन्तराल में होने लगी हैं। सूखे और बाढ़ की आवृत्ति देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है।

देश के विभिन्न जलवायुवीय क्षेत्रों के सूखे का पिछले 100 वर्षों का एक चार्ट तैयार किया गया है। चार्ट से क्षेत्र विशेष में सूखे की आवृत्ति की जानकारी प्राप्त होती है। इस जानकारी का उपयोग करके दीर्घकालीन योजनायें बनाकर इस आपदा का सामना किया जा सकता है।

राष्ट्रीय पैमाने पर बड़े सूखों में पिछली शताब्दी का 1877 का सूखा भयंकरतम् था। इस शताब्दी में 1918, 1965, 1972 और 1979 तथा 1987 में भयंकर सूखे पड़ चुके हैं। पिछली बार 1987 में देश के 407 जिलों में से 262 सूखे की चपेट में थे। उस वर्ष भी बिहार ऐसा बदनसीब प्रान्त था जो सूखा और बाढ़ दोनों झेल

जवाहर इण्टर कॉलेज, जारी-इलाहाबाद-212106

रहा था। उस समय उत्तर बिहार के 23 जिले बाढ़ की चपेट में थे जब कि दक्षिण के 6 में सूखे का प्रकोप था। उक्त सूखे में उत्तर प्रदेश के 57 जिलों में से 50 जिले सूखे की चपेट में थे। उ० प्र० के अलावा गुजरात, राजस्थान, तमिलनाडु, उड़ीसा, नागालैण्ड, हरियाणा, दिल्ली, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और पांडिचेरी सहित 13 प्रदेश सूखे की चपेट में थे।

सूखे की आवृत्ति सम्बन्धी चार्ट

	देश के जलवायुवीय क्षेत्र	सूखे की आवृत्ति
(1)	असम	15 वर्ष में एक बार
(2)	पं० बंगाल, मध्य प्रदेश, कोंकण, तटवर्ती आन्ध्र, महाराष्ट्र, केरल, बिहार और उड़ीसा	5 वर्ष में एक बार
(3)	द० कर्नाटक, पूर्वी उ० प्र०, विदर्भ	4 वर्ष में एक बार
(4)	गुजरात, पूर्वी राजस्थान, पश्चिमी उ० प्र०, तमिलनाडु, कश्मीर, रायल सीमा, तेलंगाना	3 वर्ष में एक बार
(5)	पश्चिमी राजस्थान	5 वर्ष में दो बार

स्रोत 'साइंस एज', नवम्बर 1987

सूखे की तरह ही बाढ़ की आवृत्ति भी लगातार बढ़ती जा रही है। एस० पी० चटर्जी ने 'फ्लड्स इन वेस्ट बंगाल' में बताया है कि 1953 के पूर्व तक प० बंगाल में 21 बार बाढ़ आयी। याने प्रति 7 वर्ष में एक बार। लेकिन 1953 के बाद बाढ़ आने की आवृत्ति बढ़ गयी और अब प्रति 3 वर्ष में एक बार बाढ़ आने लगी। श्री चटर्जी द्वारा वर्णित कुछ भयंकर बाढ़ इस प्रकार हैं : तीस्ता नदी की बाढ़ 1950, महानदी 1951, महानदी तीस्ता-दामोदर 1955, पश्चिम बंगाल के मध्यवर्ती भाग 1956 और 1978 की बाढ़ जिसमें पूर्वी उ० प्र० से लेकर प० बं० तक के अनेक क्षेत्र प्रभावित हुए थे।

अपार धन-जन की हानि

बाढ़ और सूखे में देश की धन-जन की अपार हानि होती है, जिसकी पूर्ति में कई-कई वर्ष लग जाते हैं और देश का विकास अवरुद्ध हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार पिछले 25 वर्षों की बाढ़ों में देश के औसतन 768 करोड़ रुपयों की प्रतिवर्ष बर्बादी हुई है। अकेले 1983 में 36 मिलियन हेक्टेयर फसल चौपट हुई। 50 मिलियन पीड़ितों में करीब 2000 काल कवलित हुए। बाढ़ नियन्त्रण और राहत कार्यों पर भी बहुत अधिक धनराशि खर्च करनी पड़ती है। 1978-79 और 1979-80 में ही बाढ़ नियन्त्रण पर प्रतिवर्ष क्रमशः 171 करोड़ और 155 करोड़ रुपये खर्च हुए। इसी तरह बाढ़ के समय के राहत कार्यों में 1978-79 में 301 करोड़, 1979-80 में 158 करोड़ और 1980-82 में 229 करोड़ रुपये खर्च हुए।

सूखे के कारण पैदावार में भयंकर गिरावट आती है जिससे देश में भुखमरी फैलती है। सरकार को विदेशों से अनाज मँगाना पड़ता है तथा राहत के नाम पर भारी धनराशि खर्च करनी पड़ती है। 1978-79 में देश में बहुत अच्छी पैदावार हुई और कुल राष्ट्रीय उत्पादन (अनाज) 131.4 मिलियन टन पहुँच गया। लेकिन 1979 के भयंकर सूखे के कारण 1979-80 का उत्पादन मात्र 109 मिलियन टन तक ही पहुँच सका। केवल एक वर्ष में 22.4 मिलियन टन की पैदावार घट जाना सूखे के कारण ही सम्भव हुआ। सूखे की स्थिति समाप्त होते ही उत्पादन फिर पहले जैसा ही बढ़ गया। 1980-81 में उत्पादन 129.5 मिलियन टन तथा 1981-82 में यह 133.3 मिलियन टन पहुँच गया।

कारण

बाढ़ और सूखा के लिए कुछ प्राकृतिक कारक तो जिम्मेदार हैं ही साथ-साथ अनेक मानवीय कारक भी जिम्मेदार हैं। जैसा कि हमने पहले बताया है कि सूखे और बाढ़ के आने की आवृत्ति लगातार बढ़ती जा रही है। ऐसा इसीलिए सम्भव हो सका क्योंकि मनुष्य द्वारा प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

पृथ्वी के मौसम में अचानक परिवर्तन, भू-भ्रंश, ज्वार-भाटा, पृथ्वी की ऊपरी पर्त में परिवर्तन, समुद्री धाराएँ, ज्वालामुखी विस्फोट, पहाड़ टूटने से नदियों के प्रवाह में परिवर्तन जैसे अनेक प्राकृतिक कारण सूखे और बाढ़ की विभीषिका के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं। लेकिन वर्तमान में मानव द्वारा प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ सूखे और बाढ़ की विभीषिका को लगातार बढ़ावा दे रहे हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा असर वन-विनाश का हुआ है।

धरती का पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में वनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जहाँ वन होते हैं वहाँ सूखा पड़ने का सवाल ही नहीं होता क्योंकि वनों की उपस्थिति मात्र से वायुमण्डल आर्द्र हो जाता है जिससे बादलों की जलवाष्प जल की बूँदों में बदल जाती है। वन बाढ़ रोकने में भी बहुत कारगर होते हैं। नदियों का जलग्रहण क्षेत्र जब वनों से ढँका होता है उस समय वर्षा का पानी बहुत धीरे-धीरे छन-छन कर नदियों में आता है जिससे एक ओर जहाँ पूरे वर्ष भर नदियों को पानी उपलब्ध होता रहता है, वहीं नदियों में मिट्टी भी नहीं आती। जिन नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों के जंगल कट गये हैं वहाँ तेज बरसात के ठीक बाद अचानक बाढ़ें आने लगी हैं क्योंकि वर्षा का पानी एकाएक नदियों में प्रवेश कर जाता है। ऐसे क्षेत्रों में मिट्टी का कटाव भी बहुत ज्यादा है। एक हानि और होती है। यह मिट्टी नदियों की तलहटी में जमते-जमते नदियों को उथला बना देती है, जिससे नदियों की जल-ग्रहण शक्ति लगातार कम होती जाती है। उत्तर भारत की सभी नदियाँ काफी उथली हो चुकी हैं। हिमालय के नंगा हो जाने से ही उत्तर भारत के अनेक हिस्सों में अक्सर बाढ़ों का प्रकोप होता रहता है।

राहत के साथ-साथ स्थायी समाधान की जरूरत

बाढ़ हो या सूखा राहत दोनों ही दशा में देना आवश्यक है। राहत चूँकि तात्कालिक सहायता मात्र होती हैं इसलिए इससे समस्या तो ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसलिए राहत तो जरूरी है ही, उससे भी जरूरी है स्थायी समाधान। स्थायी समाधान के लिए कई उपाय करने होंगे।

स्थायी समाधान करने के पूर्व यह देखना होगा कि ये समस्यायें उत्पन्न क्यों हो रही हैं। जब तक जड़ पर प्रहार नहीं होगा तब तक स्थायी समाधान की उम्मीद नहीं की जा सकती। जैसा कि ऊपर हमने बताया है कि वनों का सूखा और बाढ़ दोनों से गहरा सम्बन्ध है, हम यह देख भी रहे हैं कि जैसे-जैसे वनों का विनाश हुआ ये समस्यायें बढ़ीं अतः वनों के विकास के काम को प्राथमिकता के आधार पर लेना होगा।

1952 में अपनायी गयी 'राष्ट्रीय वन नीति' के अनुसार देश की धरती का कम से कम 33 प्रतिशत क्षेत्र वनों से ढँका होना चाहिए। उसमें भी पहाड़ी क्षेत्रों का कम से कम 60 प्रतिशत तथा मैदानी क्षेत्रों का कम से कम 20 प्रतिशत हिस्सा वनों से ढँका होना चाहिए, जबकि इक समय देश में सघन वन लगभग 10 प्रतिशत जमीन पर ही बचे हैं। हमारी सरकार का दायित्व है कि वह 1952 की अपनायी गयी वन-नीति पर अमल करते हुए देश की एक तिहाई जमीन पर वनों का विकास करे। जिन क्षेत्रों के वन खेती के काम में ले लिये गये हैं वहाँ बाग-बगीचों के विकास को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक वृक्ष प्रजातियों के स्थान पर देशी फल के बृक्षों को लगवाकर स्वच्छ पर्यावरण के विकास में योगदान किया जा सकता है।

हमारे देश की खेती योग्य कुल जमीन का 72 प्रतिशत हिस्सा वर्षा पर आधारित है। अर्थात् वहाँ बारानी खेती की जाती है। इस तरह की खेती से देश के कुल उत्पादन का 42 प्रतिशत अनाज पैदा होता है। लेकिन दुर्भाग्य से हमारे देश में अभी तक बारानी खेती के विकास पर बल नहीं दिया गया है। बारानी खेती में उपजने वाले मोटे अनाजों को पानी की आवश्यकता कम होती है। कम वर्षा होने के बावजूद ये अनाज तैयार हो जाते हैं। बारानी खेती का समुचित विकास करके हल्के -फुल्के सूखे का तो आसानी से मुकाबला किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदा बजट

प्रत्येक प्रान्त और राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्र के पास एक प्राकृतिक आपदा बजट होना चाहिए। बजट में प्रतिवर्ष सरकार की ओर से एक निश्चित धनराशि जमा की जानी चाहिए। धनराशि कितनी हो यह इस बात पर निर्भर होगी कि वहाँ प्राकृतिक आपदाओं के आवृत्ति की कितनी सम्भावनायें हैं। बजट का आधा हिस्सा स्थायी समाधान के लिए खर्च किया जाना चाहिए। आधी राशि सुरक्षित रखी होनी चाहिए जो प्राकृतिक आपदा के आने पर तुरन्त सहायता के रूप में खर्च की जानी चाहिए।● ●

चक्रवात : एक प्राकृतिक आपदा

○डॉ० मुरारी मोहन वर्मा○

प्राकृतिक आपदायें जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों, जन-जीवन तथा पर्यावरण के लिए अत्यन्त अल्प समय में विनाशकारी हो सकती हैं। अभी हाल ही में बांग्लादेश में 26, 27 तथा 30 अप्रैल 1991 को चक्रवाती तूफानी हवाओं के विध्वंसक क्रूर नर्तन ने एक लाख से भी अधिक लोगों को मौत के घाट उतार दिया। लाखों निरीह पशु-पक्षियों की जानें चली गयीं। मकानों, इमारतों, सड़कों आदि के क्षतिग्रस्त होने से करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ। सत्रह से बीस फुट ऊँची चक्रवाती उर्ध्वाधर विस्तार, जो लगभग 230 किलोमीटर प्रति घंटे की तूफानी हवाओं के साथ प्रचंड वर्षा के रूप में प्रारम्भ हुआ, ने पेड़ों, फसलों तथा विभिन्न वनस्पतियों को निर्मूल कर दिया। कुछ घंटे पूर्व इस प्रलयंकारी चक्रवात की सूचना बांग्लादेश के प्रभावित क्षेत्र के लिए चेतावनी के रूप में दी गई थी। वैसे काफी संख्या में से लोग वहाँ से हटाये जा चुके थे, फिर भी अन्य बहुत से इस प्राकृतिक आपदा से नहीं बच सके। एक सहज प्रश्न उठता है कि आखिर चक्रवात और प्रतिचक्रवात क्या बला हैं? किस तरह इनका निर्माण होता है और किस प्रकार ये विध्वंसक सिद्ध होते हैं? क्या इनके विनाशकारी प्रभाव से बचा जा सकता है? और हाँ, तो कैसे? इन सारे प्रश्नों का हल ढूँढने का प्रयास इस लेख में किया जा रहा है।

चक्रवात है क्या ?

चक्रवात अथवा गर्त-चक्र जिसे अंग्रेजी मे 'साइक्लोन' कहते हैं का निर्माण वायुमण्डल में असामान्य वायुदाब से उत्पन्न केन्द्र में एक न्यूनदाब क्षेत्र के रूप में होता है। केन्द्र में न्यूनदाब क्षेत्र को अंग्रेजी में (Low) कहा जाता है, जिसके कारण हवायें चारों ओर बाहर से भीतर केन्द्र की ओर तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं तथा चक्करदार आकृति का रूप ले लेती हैं।

चक्रवातों में चलने वाली हवाओं की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में प्राय: घड़ी की सुई की दिशा के विपरीत (Anti clock wise) होती है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ीवत् (Clock wise) होती है। चक्रवातों के प्रभाव से विस्तृत क्षेत्र में वर्षा भी होती है।

उत्पत्ति के आधार पर चक्रवातों को निम्न दो मुख्य किस्मों में विभक्त किया गया है—

1. शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Extra tropical cyclones or wave cyclones)
2. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Tropical cyclones)

रीडर, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद-211002

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात दोनों गोलार्द्धों में 30° तथा 65° उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशों के बीच स्थित भू-भागों में साधारणतया उत्पन्न होते हैं। ये चक्रवात सामान्यतः चक्राकार या अण्डाकार होते हैं। अँग्रेजी के वी (V) अक्षर की तरह उन चक्रवातों का आकार दिखता है जिनका एक भाग अन्य भाग से ज्यादा चौड़ा होता है। इन चक्रवातों का विस्तार घटता बढ़ता रहता है। इनके व्यास की लम्बाई 160 किलोमीटर से लेकर 3200 किलोमीटर तक मापी गयी है। सामान्यतः इन चक्रवातों का व्यास 300 किलोमीटर से 1500 किलोमीटर के बीच होता है। ऊर्ध्वाधर विस्तार लगभग 10 से 12 मीटर ऊँचाई तक होता है। सन् 1966 में इटली में चक्रवातों का विध्वंसकारी प्रभाव देखा गया, जिसमें हजारों व्यक्तियों की जानें गयीं तथा सम्पूर्ण वेनिस शहर जलमग्न हो गया था। इसी प्रकार 1978 में बोस्टन में भयंकर चक्रवातों के आने से करोड़ों की सम्पत्ति को क्षति हुई तथा न जाने कितनी जानें गयीं।

जब इन चक्रवातों का आकार दीर्घाकार होता है तो इन्हें द्रोणिका (Trough) कहा जाता है। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों को भी तीन वर्गों में विभाजित किया गया है, उदाहरणार्थ—अयनवर्ती गर्त चक्र (Tropical depression), तापीय गर्तचक्र (Thermal depression) तथा अनुवात गर्तचक्र (Lee depression)।

शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन मौसम वैज्ञानिकों ने समय-समय पर किया है। परन्तु किसी एक सिद्धांत को पूर्ण रूप से सभी ने स्वीकार नहीं किया है। इन चक्रवातों की उत्पत्ति मूलतः धरातल के निकट होती है। जब समदान रेखायें वृत्ताकार होती हैं तो हवाओं का रुख केन्द्र में अल्पतम वायुदाब की ओर खिंचता जाता है। धरातल जनित घर्षण, प्रवणता बल तथा कोरियालिस बल के प्रभाव से चक्राकार या साइक्लोनिक पवन प्रणाली निर्मित हो जाती है।

चक्रवातों के विकास का अध्ययन वैज्ञानिकों ने बड़े विस्तार से किया है और चक्रवात के जीवन-चक्र की चार अवस्थाओं का निर्धारण किया है। प्रारम्भिक अवस्था में ध्रुवीय वायु राशि में पूरबी हवायें तथा उष्ण कटिबन्धीय वायुराशि में पछुवा हवायें मिलकर वायु-वर्तन का रूप देते हैं। इस अवस्था में मौसम साफ रहता है तथा वायु मंदगति में विस्थापित होता रहता है। तत्पश्चात् शैशवास्था में वायु-वर्तन का अस्थिर तरंगों में रूपान्तरण होता रहता है, जिसके आयाम में लगातार वृद्धि होती जाती है। बारह से चौबीस घंटों के अन्दर इस अवस्था का विकास चक्रवात के प्रौढ़ावस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में तरंगों के शीर्ष बिन्दुओं पर निम्न दाब केन्द्र स्थित होता है जिससे पवन प्रवाह की दिशा में आकस्मिक परिवर्तन होता है। इस प्रकार निर्मित वाताग्र उत्तल होकर चक्रवात की रचना करता हुआ परिपक्वता को प्राप्त होता है। इस अवस्था में व्यापक रूप से वृष्टि होती है। अन्त में चक्रवात का संरोधन होता है जिसमें उष्णार्द्र वायुराशि धरातल से ऊपर उठती चली जाती है। संरोधन की प्रक्रिया के पूर्ण होने तक सम्पूर्ण चक्रवात के निचले भाग में ठण्डी वायुराशि से भर जाता है तथा धीरे-धीरे जिसका पूर्ण विघटन हो जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सामान्यतः पाँच से सात दिन का समय लगता है।

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति 8° से 15° उत्तरी अक्षांशों के मध्य शान्त मण्डल के समीप महासागरों पर होती है। चक्रवात बहुत प्रभावी एवं शक्तिशाली होते हैं। पश्चिमी द्वीप समूह के निकट इन चक्रवातों को

'हरीकेन' तथा चीन, जापान तथा फिलीपीन्स में 'टाइफून' कहते हैं, आस्ट्रेलिया में उन्हें 'विली-विलीस' और हिन्द महासागर के निकट 'साइक्लोन' नाम से जाना जाता है। ये चक्रवात विषुवत् रेखा पर या उसके समीप उत्पन्न नहीं हो पाते क्योंकि कोरियालिस बल का बहुधा इस क्षेत्र में अभाव रहता है।

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का व्यास 500 से 800 किलोमीटर तक होता रहता है। वृत्ताकार समदाब रेखाओं से घिरे केन्द्र पर अल्पतम वायुदाब 920 से 950 मिलीबार तक पाया जाता है। पवन प्रवाह की गति 120 से 200 किलोमीटर प्रति घंटे तक देखी जाती है। धरातल से इन चक्रवातों की ऊँचाई 10,000 मीटर से 15,000 मीटर तक होती है। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की एक खास पहचान होती है कि चक्रवातों के केन्द्र पर एक शांत क्षेत्र पाया जाता है, जिसे 'चक्रवात-चक्षु' (Eye of cyclone) कहते हैं। इस वृत्ताकार क्षेत्र में पवन का वेग कम हो जाता है। इस चक्षु का व्यास प्राय: 24 किलोमीटर होता है परन्तु 8 से 80 किलोमीटर तक व्यास की लम्बाई अंकित की गई है। चक्रवात-चक्षु के भीतर तापमान बाहर की अपेक्षा अधिक रहती है जबकि आपेक्षिक आर्द्रता कम पायी जाती है। किस प्रकार चक्षु का निर्माण होता है यह अभी ठीक के ज्ञात नहीं हो सका है। मौसम वैज्ञानिकों का मत है कि वायु के अवतलन के कारण इस चक्षु का निर्माण होता है जिससे शांत वातावरण क्षेत्र बनता है।

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति के लिए पाँच आवश्यक दशायें निर्धारित की गयी हैं जिनमें पहली दशा के अन्तर्गत चक्रवात के केन्द्र में आरोही वायु का तापमान आस-पास अपेक्षाकृत अधिक होना चाहिए। साथ में आर्द्रता की मात्रा भी अधिक होना चाहिए जिससे संघनन की गुप्त ऊष्मा आवश्यक मात्रा में उपलब्ध हो सके। इस दशा की सम्भावना उन महासागरों पर प्राय: देखी जाती है, जिनके तल का तापमान 27° सेण्टीग्रेड से ऊपर होता है। कोरियालिस बल से उत्पन्न आवर्तों द्वारा चक्रवातीय परिसंरचना होती है, जिसे दूसरी आवश्यक दशा में आवर्त के निरन्तर उत्पन्न होने की प्रक्रिया कही जा सकती है, जिसके लिए उर्ध्वाधर वायु-वर्तन अत्यधिक क्षीण होनी चाहिए। चौथी दशा में अन्तरोष्ण अभिसरण क्षेत्र में उत्पन्न लघु आकार के भ्रमिल चक्रवात निर्माण के लिए उत्प्रेरक के रूप में क्रियाशील रहते हैं। इनकी उत्पत्ति के लिए केन्द्र में न्यून वायुदाब होना आवश्यक होता है। पाँचवीं दशा में चक्रवातों के ऊपर 9000 मीटर से 15,000 मीटर की ऊँचाई पर उच्च वायुदाब का क्षेत्र होना चाहिए, ताकि धरातल के ऊपर उठने वाली वायु को बाहर फेंकने की प्रक्रिया चलती रहे।
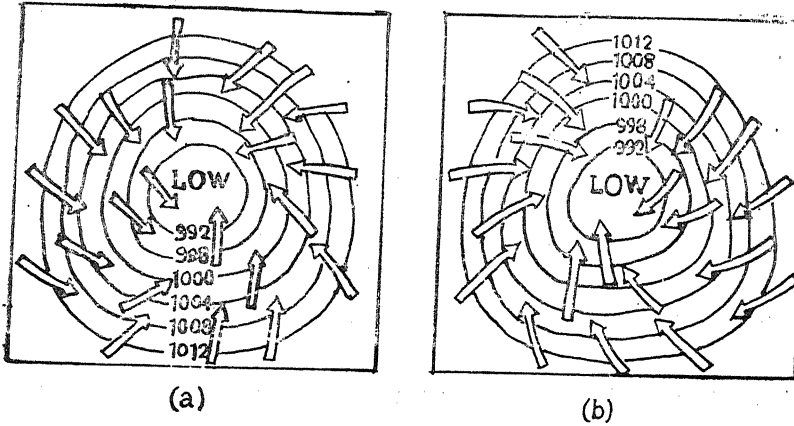
चित्र 1 (a) चक्रवाती हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में, (b) चक्रवाती हवायें दक्षिणी गोलार्द्ध में

(a)

(b)
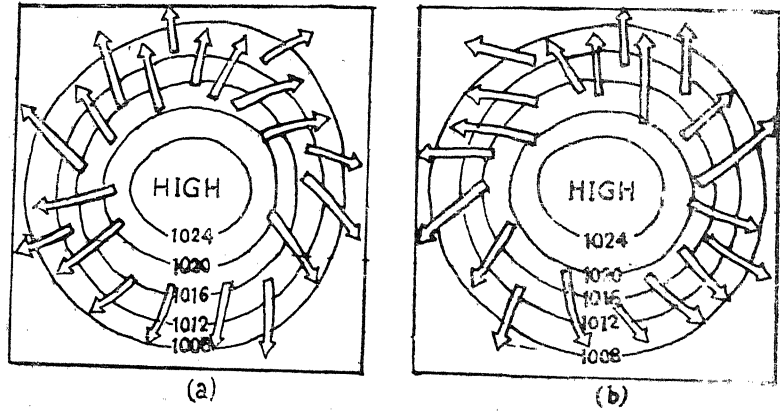
चित्र 2. (a) प्रतिचक्रवाती हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में (b) प्रतिचक्रवाती हवायें दक्षिणी गोलार्द्ध में

मौसम वैज्ञानिकों ने उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों को वायु का एक ऐसा प्रचण्ड भ्रमिल कहा है, जिसका चक्करदार केन्द्रोन्मुखी प्रवाह तथा विभिन्न स्तरों पर तीव्रगति से ऊपर की ओर वेगपूर्ण वायु का निःस्राव (out flow) के रूप में पाया जाता है।

प्रतिचक्रवात क्या है ?

प्रतिचक्रवातों की तीव्रता चक्रवातों की तुलना में कम होती है किन्तु इनका विस्तार चक्रवातों से कहीं अधिक होता है। प्रतिचक्रवात के निर्माण में हवायें चारों तरफ बाहर की ओर चक्कर काटती हुई चलती हैं। चक्रवातों में पवन-प्रवाह की दिशा निश्चित रूप से प्रतिचक्रवातों की सामान्य दिशा के विपरीत होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में पवन-प्रवाह की दिशा घड़ीवत तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रतिघड़ीवत पायी जाती है। चक्रवात संरचना में केन्द्र में अल्पतम वायुदाब की स्थिति उत्पन्न होती है जबकि प्रतिचक्रवात निर्मित होने की अवस्था में उच्च वायुदाब क्षेत्रों के केन्द्र पर अधिकतम वायुदाब उत्पन्न करता है। प्रतिचक्रवात की संरचना में जब वायुदाब क्षेत्र वृत्ताकार न होकर दीर्घाकार होता है तब इसे कटक (Ridge) कहते हैं।

प्रतिचक्रवात प्रायः चक्रवातों के पीछे चलते हैं। इनकी गति 30 से 50 किलोमीटर प्रति घंटे तक आँकी गई है किन्तु कभी-कभी ये कई दिनों तक एक ही स्थान पर स्थित हो जाते हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रायः उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के विनाशकारी प्रभाव मानव-जीवन और पर्यावरण पर देखे जाते हैं। डॉ० ए० के० साहा ने अपने लेख में समय-समय पर इन चक्रवातों द्वारा की गई भयंकर क्षतियों का विवरण दिया है तथा इस प्राकृतिक आपदा की विभीषिका का उल्लेख करके इस महत्वपूर्ण विषय पर वैज्ञानिकों एवं सरकार का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है। ये चक्रवात आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा तामिलनाडु में विध्वंसक रूप में आते रहते हैं। बांग्लादेश में चक्रवातों की विभीषिका और भी भयंकर रूप में दिखाई देती है। नवम्बर 1970 में बांग्लादेश की धरती पर विश्व का सबसे विनाशकारी चक्रवाती तूफानों का प्रलय-

कारी ताण्डव आया जिसमें दो लाख से कहीं अधिक व्यक्तियों की जानें गयीं। पेड़-पौधे और वनस्पतियों का एक तरफ से सफाया हो गया। मृत पशु-पक्षियों का अम्बार लग गया। इसके अतिरिक्त उस प्रभावित भू-भाग की हजारों किलोमीटर क्षेत्र की पारिस्थितिकी क्षतिग्रस्त हो गयी।

19 नवम्बर 1977 को आन्ध्र प्रदेश में भयंकर चक्रवात आया जिसकी गति लगभग 260 किलोमीटर प्रति घंटे रिकार्ड की गई। इस चक्रवात की पूर्व सूचना नहीं प्राप्त हो सकी क्योंकि मौसम विभाग को समुचित संकेतों का विवरण प्राप्त न हो सका था। इस चक्रवात से लगभग 71 लाख लोग बुरी तरह प्रभावित हुए, कितने ही व्यक्तियों की जानें गयीं और करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ। लगभग एक वर्ष के बाद ही 13 मई 1979 को इस भू-भाग पर प्रलयंकारी चक्रवात की पुनरावृत्ति हुई। नेलोर तथा कावेली के मध्य स्थित क्षेत्र में 40 लाख लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। सैकड़ों व्यक्तियों की जानें गयीं तथा असंख्य पशु-पक्षियों की जीवन लीला समाप्त हो गई। इससे लगभग 170 करोड़ रुपये की हानि का अनुमान लगाया गया। उड़ीसा के पैराद्वीप क्षेत्र में 4 जून 1982 को एक विशाल चक्रवात 140 किलोमीटर प्रति घंटे की गति से उत्पन्न हुआ जिसके विनाशकारी प्रभाव से अपार क्षति हुई। ऐसे ही पश्चिमी बंगाल में समय-समय पर 1965 से 1980 के मध्य इक्कीस बार चक्रवाती तूफानों की पुनरावृत्ति हुई। इसी समय के दौरान तमिलनाडु में नौ बार तथा चौदह बार आंध्र प्रदेश में चक्रवात आये, जबकि पूर्वीतटों पर चौवालिस बार चक्रवाती तूफानों का आक्रमण हुआ। 1965 के पूर्व भी कई बार चक्रवातों का विनाशकारी प्रभाव देखा गया परन्तु इस लेख में उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। अतः हमने पाया कि चक्रवाती तूफान के द्वारा समय-समय पर विश्व के अनेक भू-भागों पर प्राकृतिक आपदा के रूप में अपने विनाशकारी क्रिया-कलापों से पर्यावरण को आक्रान्त करते रहे हैं।

प्रेक्षित उपग्रहों तथा राडारों की मदद से चक्रवाती हवाओं की पूर्व सूचना के संकेत लगभग 48 घंटे पूर्व मौसम वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। उपग्रहों से प्राप्त फोटोग्राफों (चित्रों) की सहायता से चक्रवाती तूफानों की स्थिति, संरचना, दिशा एवं गति का अनुमान किया जा सकता है। सरकार तथा समाज सेवी संस्थाओं का उत्तरदायित्व बनता है कि वे प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को दूसरे सुरक्षित स्थानों पर युद्ध स्तर पर कार्यरत होकर पहुँचायें। चक्रवाती तूफानों के विघटन के पश्चात् उन लोगों को पुर्नस्थापित करने में भी सहयोग दें जिससे यथासम्भव जन-जीवन की सुरक्षा की जा सके। इन ढेर सारी चुनौतियों के बावजूद चक्रवातों द्वारा सम्भावित क्षति को किसी सीमा तक कम अवश्य किया जा सकता है साथ ही साथ पर्यावरण की क्षति पेड़-पौधों का विनाश, मृदा का अपरदन आदि अनेक ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जहाँ बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। ● ●

(शेष पृष्ठ 46 का)

इस प्रकार अध्ययनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि जल में आयनों की प्रकृति का मिट्टी के आयतन पनिवर्तन पर काफी प्रभाव पड़ता है। आज हमारे पास ऐसी अनेक वैज्ञानिक विधियाँ हैं, जिनकी सहायता से हम फैलने "वाली या काली मिट्टी की गुणवत्ता[1]" में सुधार कर सकते हैं। यदि भवन बनाने के पूर्व हमें मिट्टी की गुणवत्ता का ज्ञान हो तो भविष्य में होने वाली क्षतियों से यदि पूरी तरह नहीं तो आंशिक रूप से तो बचाव सम्भव है ही। वैसे यहाँ एक तथ्य उजागर करना समीचीन होगा कि इस प्रकार की काली मिट्टी कपास की खेती के लिए अति उत्तम है। ● ●

भूकम्प और हमारा पर्यावरण

○राजेश कुमार केसरी○

हमारे पर्यावरण को प्रभावित करने वाली प्राकृतिक आपदाओं में भूकम्प सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। साधारण अर्थ में भूकम्प वह घटना है, जिसके द्वारा पृथ्वी की सतह में अकस्मात कम्पन्न या हलचल पैदा हो जाती है। भूकम्प आने के बारे में पुराने समय में लोग दैवी शक्ति का प्रकोप भी मानते रहे हैं लेकिन वैज्ञानिक अनुसन्धानों के आधार पर भूकम्प आने के दो प्रमुख कारण हैं—

1. **भूपटल-भ्रंश**

भूकम्प प्रायः कमजोर एवं अव्यवस्थित भूपटल के सहारे आते हैं। पृथ्वी का स्थल मण्डल (Lithosphere) 80 किमी० मोटाई की छः मजबूत चट्टानों की प्लेटों में बँटा हुआ है जो एक दूसरे के सम्पर्क में गतिशील रहते हैं। इस अवधारणा के अनुसार ये प्लेटें एक साल में 5 सेमी० उत्तर-पूर्व दिशा में घूम जाती हैं। कभी-कभी इन चट्टानों के बीच घर्षण बल बढ़ने लगता है। घर्षण बल के प्रतिरोध से तनाव उत्पन्न होता है, और जब चट्टानें तनाव सहन नहीं कर पातीं तो टूट जाती हैं। इस कारण चट्टान के अचानक टूटने से पृथ्वी में जोरों से कम्पन पैदा हो जाता है तथा भूकम्प का अनुभव होता है।

2. **ज्वालामुखी-क्रिया**

ज्वालामुखी विस्फोट भी भूकम्प आने के प्रमुख कारणों में से एक है। ज्वालामुखी में विस्फोट होने पर धरातल के नीचे से जब तीव्र गति से लावा, गैस, वाष्प आदि बाहर निकलने के लिये धक्के लगाते हैं तो भूपटल में अनायास ही जोरों से कम्पन होने लगता है तथा भयंकर भूकम्प का एहसास होता है। इस प्रकार के भूकम्प का प्रभाव-क्षेत्र 160 से 240 किमी० तक होता है। इसके अलावा भूकम्प के और भी कारक हैं जो भूकम्प के लिये उत्तरदायी होते हैं। जैसे—प्राकृतिक, संतुलन-मूलक, प्लूटॉनिक और कृत्रिम भूकम्प।

भूकम्प की शुरुआत सबसे पहले जहाँ से होती है उस स्थल विशेष को 'भूकम्प मूल' (Seismic Focus) तथा जहाँ सबसे पहले भूकम्प का अनुभव होता है, उस स्थान को 'भूकम्प केन्द्र' (Epicentre) या 'अधिकेन्द्र' कहते हैं। इसलिये अधिकेन्द्र अन्य भागों की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावित होता है। भूकम्पीय लहरों की तीव्रता सबसे अधिक होती है लेकिन जैसे-जैसे अधिकेन्द्र से दूर होते जाते हैं भूकम्पन की तीव्रता तथा प्रभाव कम होता जाता है।

भूकम्प आने के समय तीन प्रकार की तरंगें (waves) निकलती हैं। पहली तरंग, जिसे 'P' से प्रदर्शित करते हैं, ध्वनि तरंगों के समान होती है। इसकी गति 5.5 के 8 किमी० प्रति सेकेन्ड होती है। इन तरंगों की उत्पत्ति

98-ए, दिलकुशा, नया कटरा, इलाहाबाद-211002

चट्टानों के कणों के सम्पीडन और फैलाव के कारण होती है। दूसरे प्रकार की तरंग को 'S' से दर्शाते हैं। यह जल तरंग (Water wave) या प्रकाश तरंग (Light wave) के समान होती है। इसकी प्रति 3.3 से 8 किमी० प्रति सेकेन्ड होती है। यह पहली तरंग 'P' के बाद उत्पन्न होती है। इस तरंग को विध्वंस तरंग भी कहते हैं। ये दोनों तरंगें पृथ्वी के अन्दर ठोस चट्टानों से टकराकर परिवर्तित होती हैं और बिभिन्न दिशाओं में फैल जाती हैं, जिसके आपस में मिलकर PP, PS, PSP, SSS तथा और दूसरे प्रकार की तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। तीसरी प्रकार की तरंग, जो पृथ्वी के सतह के सहारे चलती है, इसे 'लव और रेलिघ तरंग' कहते हैं। इसे 'L' द्वारा दर्शाते हैं। इसे 'सतह तरंग' भी कहते हैं। ईसकी गति 3 किमी० प्रति सेकेन्ड होती है। यह तरंग सर्वाधिक विनाशकारी होती है। इसका प्रभाव जल-थल दोनों पर होता है। इन तीनों तरंगों तथा उनकी विभिन्न गतियों द्वारा पृथ्वी की आंतरिक बनावट के बारे में विशेष जानकारी मिलती है। 'P' और 'S' तरंगों के अध्ययन से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकले हैं। साथ ही इनकी गति के आधार पर अधिकेन्द्र का पता लगाया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदाओं में भूकम्प सबसे अधिक भीषण और विनाशकारी होता है। भूकम्प से कुछ ही पल में व्यापक धन-जन की हानि होती है जिससे पर्यावरण भी प्रभावित होता है। इसलिये अगर हम भूकम्प को अभिशाप मानें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। सन् 1947 से 1980 के बीच भूकम्प से मरने वालों की संख्या लगभग 50,000,000 तक पहुँच गयी है। विगत् 100 वर्षों से भारत में चार ऐसे भूकम्प आये जिसका परिमाण 'रिचर स्केल' पर $M \geqslant 8.0$ से ऊपर था। इससे 1897 में शिलांग, 1905 में कांगडा, 1934 में बिहार-नेपाल और 1950 में आसाम में काफी जन-धन की हानि हुई। इसके अलावा कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं जिनसे एक तथ्य सहज ही उभर कर सामने आता है और वह यह कि भूकम्प का प्रभाव कितना विनाशकारी होता है।

1. 11 अक्टूबर 1937, कलकत्ता का भूकम्प भारत के इतिहास का सबसे बड़ा भूकम्प है जिसके कुप्रभाव से 30 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी।

2. जुलाई 1976 में चीन के तांगशाह प्रांत में आये विनाशकारी भूकम्प में 2 लाख 42 हजार लोगों की मृत्यु हुई।

3. 21 अगस्त 1988 में बिहार-नेपाल में भूकम्प आने से काफी धन-जन की क्षति हुई। नेपाल में मरने वालों की संख्या हजार में थी, जबकि बिहार में लगभग 21 लोगों की जानें गयीं और 570 घायल हुए। इस भूकम्प का परिमाण रिचर स्केल (Richter Scale) पर 6·7 था। इसी प्रकार 15 जनवरी 1934 में बिहार-नेपाल में आये भूकम्प से 10 हजार लोगों की मृत्यु हुई थी।

4. दिसम्बर 1988 में आर्मेनिया (सोवियत संघ) में आये भूकम्प से चार शहर बुरी तरह से तबाह हो गये, फलस्वरूप 25 हजार लोग मारे गये तथा 25 अस्पताल पूरी तरह ध्वस्त हो गये। इस भूकम्प से सोवियत रूस को भारी क्षति उठानी पड़ी।

5. जून 1990 में ईरानी शहर रद्बार में भीषण भूकम्प से 37 हजार लोगों की मृत्यु हुई।

6. 16 जून 1828, कश्मीर में आये भूकम्प से 1000 व्यक्तियों की मृत्यु हुई। कश्मीर में ही 30 मई 1985 को पुन: आये एक भूकम्प में 3000 लोग मारे गये थे।

7. 12 जून 1887 को आसाम में आये भूकम्प से 1500 व्यक्ति मारे गये।

इसके अतिरिक्त सैनफ्रांसिस्को और टोकियो जैसे अति सम्पन्न शहरों को भी इस सदी के दो बड़े-बड़े भूकम्पों की मार झेलनी पड़ी। भारत में लगभग 55 प्रतिशत धरती का हिस्सा सक्रिय भूकम्पीय क्षेत्र में आता है। बहुत से भूकम्प विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों में आये। लेकिन जनसंख्या वृद्धि के साथ जान-माल की हानि में वृद्धि हुई है।

भूकम्प आने से विभिन्न प्रकार से क्षति होती है। उदाहरण के लिये पुल टूट जाते हैं, सड़कें फट जाती हैं, रेल पटरियाँ टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं जिससे यातायात में बाधा पड़ती है। इसका सबसे बुरा प्रभाव नगरों पर होता है। इसमें मनुष्यों के अतिरिक्त भवन, कल-कारखाने नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी भूकम्प से मकानों, खानों तथा कारखानों में भयंकर रूप से आग लग जाती है, जिससे धन-जन और पर्यावरण को काफी नुकसान पहुँचता है। भूकम्प आने से कहीं-कहीं धरातल का कुछ भाग फट जाता है तथा दरार का निर्माण हो जाता है। भूकम्प से प्रभावित क्षेत्रों में स्थल के बड़े-बड़े खंड टूट कर नीचे की तरफ गिरने लगते हैं। इसी तरह पर्वतीय क्षेत्रों में बड़े-बड़े शिलाखंडों के नदियों के मार्ग में आ जाने से नदियों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है फलस्वरूप या तो उसमें बाढ़ आ जाती है या मार्ग परिवर्तित हो जाता है। समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में भूकम्प से ऊँची-ऊँची तरंगें उठने लगती हैं, जिससे समीपवर्ती भागों में काफी क्षति होती है। जापान में अन्ततः सागरीय भूकम्पों (Submarine Earthquakes) को सूनामी (Tsunamis) के नाम से जाना जाता है। इसमें सागर की तली में आकस्मिक परिवर्तन तथा अव्यवस्था के कारण सागरीय जल में विस्थापन से लहरें उत्पन्न होने लगती हैं।

एक ओर जहाँ भूकम्प से हमें हानि होती है तो दूसरी ओर इससे अनेक लाभ भी हैं। जैसे—भूकम्प के कारण स्थल में उभार हो जाने से नये स्थल-खंडों का निर्माण हो जाता हैं। भूस्खलन होने पर चट्टानों के विघटन से मिट्टियों की रचना के लिये आवश्यक पदार्थ मिल जाते हैं, जो कृषि की दृष्टि से लाभदायक हैं। कभी-कभी भूकम्प से धरातल में हुए दरारों से गर्म जल के स्रोत निकल पड़ते हैं जैसे—गंधकीय गर्म जल-स्रोत। ऐसे जल-स्रोतों के जल के उपयोग से चर्म रोग जैसे रोग दूर हो जाते हैं। भूकम्प से उत्पन्न ज्वालामुखी से निकले लावा से काली मिट्टी बनती है जो कपास तथा गेहूँ की खेती के लिये उपयुक्त होती है। लेकिन ये संरचनात्मक कार्य विध्वंसात्मक कार्य की तुलना में नगण्य होते हैं।

भूकम्प के समय निकलने वाली तरंगों को हम जिस यन्त्र द्वारा अंकित करते हैं उसे 'सीस्मोग्राफ' (Seismograph) कहते हैं। इस यन्त्र के द्वारा तरंगों का अध्ययन सीस्मोलॉजी या भूकम्प विज्ञान Seismology) कहलाता है। भारत में पूना, बम्बई, देहरादून, दिल्ली तथा कलकत्ता में भूकम्प मापक या लेखन यन्त्रों की स्थापना की गयी है। भूकम्प में निकलने वाली ऊर्जा (Energy) का परिमाण रिचर स्केल (Richter Scale) पर नापते हैं। एक बड़ा भूकम्प 1000 किमी० लम्बा, 100 किमी० गहरा और 50 किमी० दोनों तरफ का क्षेत्र नष्ट कर सकता है। रिचर परिमाण की गणना लॉग (log) के पैमाने पर करते हैं, और इसका मान 2 से 9 तक होता है। अगर भूकम्प का परिमाण रिचर स्केल पर 6 है तो यह 10 गुना शक्तिशाली होगा परिमाण 5 से, तथा 100 गुना शक्तिशाली होगा परिमाण 4 से। सबसे बड़ा भूकम्प आसाम में 1897 और 1950 में आया था जिसका परिमाण 8.7 और 8.5 था। इस भूकम्प से बहुत बड़ा क्षेत्र प्रभावित हुआ और हजारों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा।

कुछ भूकम्प इतने हल्के होते हैं जिनका पता हमें सामान्य रूप से नहीं चल पाता है । इसे सिर्फ सीस्मोग्राफ यन्त्र द्वारा ही जाना जा सकता है । लेकिन जानवरों में इसके विपरीत कुछ विचित्र प्रकार की शक्ति होती है जिससे वे भूकम्प के आने की पूर्व सूचना पा लेते हैं अर्थात् उन्हें एहसास होने लगता है । उनके क्रिया-कलाप में असामान्य-सा परिवर्तन होने लगता है । जैसे कुत्ते जोर से भौंकने लगते हैं और काटने के लिये दौड़ते हैं, घोड़े और गायें अपने को बंधन से छुड़ा कर जंगली जानवरों की तरह दौड़ने लगती हैं, मछलियाँ पानी में उछलने लगती हैं तथा चूहे, साँप तथा दूसरे रेगनें वाले जन्तु (सरीसृप वर्ग के) अपने बिलों में से बाहर निकल आते हैं । जानवरों का यह असामान्य व्यवहार विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण, कुछ गैस या धरती की गति के कारण होता है ।
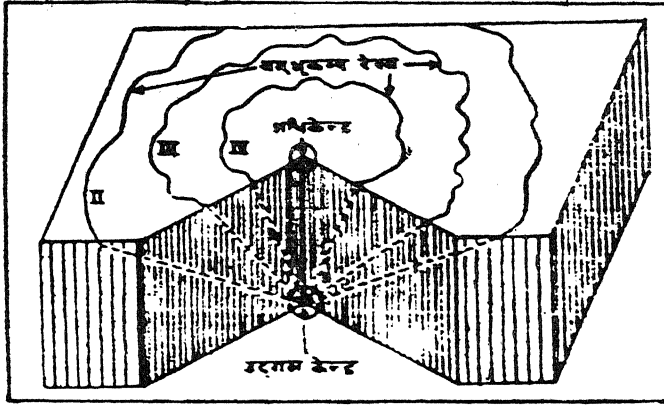
चित्र में उद्गम केन्द्र-अधिकेन्द्र और समभूकम्प रेखा दिखाया गया है

भूकम्प के कारण हुए विनाश से पर्यावरण में हुआ बदलाव पेड़-पौधों और जीवों के लिए समस्या उत्पन्न करता है । भूकम्प का आना अभी भी रहस्य बना हुआ है । अर्थात् भूकम्प वैज्ञानिकों के अनुसार इसके आने का सही समय, विस्तार और स्थान का सही-सही पता लगाना अभी पूर्ण रूप से सम्भव नहीं हो पाया है । सिर्फ इसके लिये सम्भावनाएँ व्यक्त की जा सकती हैं । लेकिन इस क्षेत्र में खोज जारी है और 20वीं सदी के अन्त तक ऐसी सम्भावनाएँ हैं कि भूकम्प के आने का समय, विस्तार तथा स्थान की सही-सही जानकारी मिल पायेगी । भारत में कुछेक ऐसी संस्थायें हैं जो भूकम्प के आने की सम्भावित पूर्व सूचना देती हैं—

(1) नेशनल जियोफिजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, हैदराबाद

(2) सेन्ट्रल वाटर एन्ड पावर रिसर्च स्टेशन, पुणे

(3) भाभा एटामिक रिसर्च सेन्टर, बम्बई (मुम्बई)

(4) जियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, कलकत्ता

इसके अतिरिक्त शिलांग, दिल्ली, रुड़की, देहरादून में भी ऐसी संस्थायें हैं जो भूकम्प की सूचना देती हैं । साथ ही 1988 में बिहार-नेपाल में आये भूकम्प के बाद विज्ञान और तकनीकी विभाग (डी एस टी) के द्वारा अमृतसर (पंजाब) के काँगड़ा घाटी में भूकम्प की सूचना देने वाला स्टेशन बनाया गया है । इससे हमें अब आने वाले

भूकम्पों की सम्भावित जानकारी मिलती रहेगी। भूकम्प की पूर्ण सूचना प्राप्त करना हमारे लिये एक बहु उपलब्धि है क्योंकि इससे लोगों को वहाँ से हटाकर जन-धन की हानि कम की जा सकती है।

भूकम्प आने से पहले अगर इसके बारे में पूर्वानुमान हो जाये तो निश्चय ही इनसे होने वाले कम किया जा सकता है। भवन-निर्माण संहिता को सख्ती से लागू करके, निर्माण में असुरक्षित और अनुपयु तथा तकनीक के प्रयोग पर पाबंदी लगा देनी चाहिये। भूकम्प-सुरक्षित मकान बनाने चाहिये। भूकम्प से तरीकों की जानकारी लोगों तक पहुँचानी चाहिये। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के एक प्रकाशन में यह स्वी गया है कि गरीब देशों में, जहाँ बड़े शहरों के इर्द-गिर्द अनगढ़ रूप से बनाये गये आवास बड़ी संख्या में फै धरती हिलने पर भारी जानी नुकसान होता है। आज हम उस स्थिति में रह रहे हैं जहाँ पुराने और असुरक्षि निर्माण तकनीक के कारण एक क्षणिक भूकम्प भी 25 हजार लोगों को मौत की नींद सुला सकता है। लेकि ओर हमारे पास आज ऐसी तकनीकें हैं जिनकी मदद से विनाशकारी आपदाओं के प्रभावों को काफी कम सकता है। साथ ही भूकम्प से बचाव के लिये चेतना एवं मानसिकता का विकास महत्वपूर्ण है, जिससे भूक की आपात स्थिति में प्रभावित नागरिकों को उचित सहायता पहुँचाई जा सके। नागरिकों तथा अधिकारियों बात का विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं को रोक पाना कठिन ही नहीं असम्भव है, लेकिन अपनी जागरूकत पर्याप्त तैयारियों से उनसे होने वाले जान-माल की क्षति और पर्यावरण के नुकसान को कम जरूर कि सकता है। ● ●

ज्वालामुखी : विनाश और वरदान

○सुनील दत्त तिवारी○

ज्वालामुखी उद्‌गार वह प्राकृतिक आपदा है, जो एक भय का अनुभव कराती है। यह तथ्य सर्वविदित कि पृथ्वी पहले एक आग का गोला थी, जो कालान्तर में ठंडी होकर जीवधारियों के रहने योग्य हो गयी। इस पृ का आंतरिक हिस्सा अब भी बहुत गर्म है। ज्वालामुखी एक प्रकार के पर्वत हैं जो लावा, राख और चट्टानों टुकड़ों के पृथ्वी के गर्भ से गोलाकार छिद्र के माध्यम से बाहर आने से बनते हैं। इनके चारों ओर लावा के जमने ये शंकु के आकार के हो जाते हैं। संसार में ज्वालामुखी का उद्‌गार बहुत पहले से ही हो रहा है। 26 अगस्त त 27 अगस्त 1883 में हिन्देशिया स्थित क्रेकाटोआ ज्वालामुखी के अतिभयानक विस्फोटों के कारण विशालकाय घ बादल के समान तप्त गैसीय पदार्थ एवं शैलकण 80 किलोमीटर की ऊँचाई तक पहुँच गये थे। इससे इस द्वीप क दो-तिहाई भाग लुप्त हो गया था। सन् 79 ई० में विसुवियस ज्वालामुखी के विस्फोटक से 30,000 की आबाद

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद-211002

भूकम्पों की सम्भावित जानकारी मिलती रहेगी। भूकम्प की पूर्ण सूचना प्राप्त करना हमारे लिये एक बहुत महत्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि इससे लोगों को वहाँ से हटाकर जन-धन की हानि कम की जा सकती है।

भूकम्प आने से पहले अगर इसके बारे में पूर्वानुमान हो जाये तो निश्चय ही इनसे होने वाले विनाश को कम किया जा सकता है। भवन-निर्माण संहिता को सख्ती से लागू करके, निर्माण में असुरक्षित और अनुपयुक्त सामग्री तथा तकनीक के प्रयोग पर पाबंदी लगा देनी चाहिये। भूकम्प-सुरक्षित मकान बनाने चाहिये। भूकम्प से बचाव के तरीकों की जानकारी लोगों तक पहुँचानी चाहिये। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के एक प्रकाशन में यह स्वीकार किया गया है कि गरीब देशों में, जहाँ बड़े शहरों के इर्द-गिर्द अनगढ़ रूप से बनाये गये आवास बड़ी संख्या में फैले होते हैं, धरती हिलने पर भारी जानी नुकसान होता है। आज हम उस स्थिति में रह रहे हैं जहाँ पुराने और असुरक्षित भवन-निर्माण तकनीक के कारण एक क्षणिक भूकम्प भी 25 हजार लोगों को मौत की नींद सुला सकता है। लेकिन दूसरी ओर हमारे पास आज ऐसी तकनीकें हैं जिनकी मदद से विनाशकारी आपदाओं के प्रभावों को काफी कम किया जा सकता है। साथ ही भूकम्प से बचाव के लिये चेतना एवं मानसिकता का विकास महत्वपूर्ण है, जिससे भूकम्प आने की आपात स्थिति में प्रभावित नागरिकों को उचित सहायता पहुँचाई जा सके। नागरिकों तथा अधिकारियों को इस बात का विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं को रोक पाना कठिन ही नहीं असम्भव है, लेकिन अपनी जागरूकता और पर्याप्त तैयारियों से उनसे होने वाले जान-माल की क्षति और पर्यावरण के नुकसान को कम जरूर किया जा सकता है। ● ●

ज्वालामुखी : विनाश और वरदान

○सुनील दत्त तिवारी○

ज्वालामुखी उद्‌गार वह प्राकृतिक आपदा है, जो एक भय का अनुभव कराती है। यह तथ्य सर्वविदित है कि पृथ्वी पहले एक आग का गोला थी, जो कालान्तर में ठंडी होकर जीवधारियों के रहने योग्य हो गयी। इस पृथ्वी का आंतरिक हिस्सा अब भी बहुत गर्म है। ज्वालामुखी एक प्रकार के पर्वत हैं जो लावा, राख और चट्टानों के टुकड़ों के पृथ्वी के गर्भ से गोलाकार छिद्र के माध्यम से बाहर आने से बनते हैं। इनके चारों ओर लावा के जमने से ये शंकु के आकार के हो जाते हैं। संसार में ज्वालामुखी का उद्‌गार बहुत पहले से ही हो रहा है। 26 अगस्त तथा 27 अगस्त 1883 में हिन्देशिया स्थित क्रेकाटोआ ज्वालामुखी के अतिभयानक विस्फोटों के कारण विशालकाय घने बादल के समान तप्त गैसीय पदार्थ एवं शैलकण 80 किलोमीटर की ऊँचाई तक पहुँच गये थे। इससे इस द्वीप का दो-तिहाई भाग लुप्त हो गया था। सन् 79 ई० में विसुवियस ज्वालामुखी के विस्फोटक से 30,000 की आबादी

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद-211002

वाले सुविकसित शहर पम्पाई ध्वस्त हो गया। कुछ दिनों पहले जापान और फिलीपीन्स में सैकड़ों वर्षों से प्रसुप्त ज्वालामुखी फिर से जागृत हो चुके हैं।

बहुत से ज्वालामुखियों का उद्‌गार 'प्लांट टेक्टोनिक्स' (पादप इमारतों) के ऊपर निर्भर करता है। इनके बहुत से उद्‌गार (विस्फोट) तो जल के अन्दर ही होते हैं और वे कभी-कभी ही जल के बाहर आते हैं। ये ज्वालामुखी केवल इस धरती पर ही नहीं, अपितु अन्य ग्रहों पर भी पाये गये हैं। पृथ्वी के बाद मंगल ग्रह का दूसरा नम्बर है, जहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में ज्वालामुखी के क्षेत्र हैं। उद्‌गार के समय इनमें से बड़ी तेजी से लावा निकलता देखा गया है। इनके द्वारा निकलने वाले पदार्थों में पृथ्वी की तुलना में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया है। पृथ्वी पर ज्वालामुखियों के कई बड़े क्षेत्र हैं, जिन्हें निम्न मुख्य तीन पेटियों में रखा गया है—

सरकम पैसिफिक बेल्ट (Circum Pacific Belt)

ज्वालामुखी की यह पेटी प्रशान्त महासागर को चारों ओर से घेरे हुए है। यह उत्तरी अमेरिका के उत्तरी सिरे केपहार्न से शुरू होकर एण्डीज तथा राकी पर्वतों के किनारे-किनारे अलास्का तक जाती है तथा एल्यूसियन द्वीप समूह, जापान तथा फार्मोसा और फिलीपीन्स द्वीप समूह में पहुँचती है। यहाँ पर दो हिस्सों में बँट जाती है, जिसका एक भाग ईस्ट इन्डीज द्वीप समूहों—जावा, सुमात्रा और बोर्नियों तथा दूसरा भाग न्यूजीलैण्ड तक जाता है।

मिड वर्ल्ड बेल्ट (Mid World Belt)

यह पेटी वेस्ट इन्डीज से शुरू होती है और कैनेरी द्वीप समूह, काकेशस पर्वत, तुर्की, मेडिट्रेरियन सी से होता हुआ हिमालय तक पहुँचता है।

अफ्रीकन बेल्ट (African Belt)

यह पेटी ग्रेट अफ्रीकी रिफ्ट घाटी में पायी जाती है। भू-वैज्ञानिक काल में भारत ज्वालामुखी सक्रियता से मुक्त नहीं था। धारवाल कल्पका डालमा ट्रैप, विन्ध्यन कल्प का मलानी रायोलाइट आदि भारत में ज्वालामुखी उद्‌गार के प्रतीक हैं। वर्तमान में भारत में कोई सक्रिय ज्वालामुखी नहीं है। बंगाल की खाड़ी में स्थित बैरन द्वीप तथा अण्डमान द्वीप समूह के नारकोण्डम द्वीप में दो प्रसुप्त ज्वालामुखी पाये जाते हैं। बैरन द्वीप का ज्वालामुखी लगभग 330 मीटर ऊँचा और तीन किलोमीटर व्यास का है। ये ज्वालामुखी 1795 तथा 1803 के उद्‌गारों के बाद अब सामान्यतया प्रसुप्त अवस्था में हैं।

इन ज्वालामुखियों में पुराने ज्वालामुखी नये ज्वालामुखियों के द्वारा स्थानान्तरित होते रहते हैं। पुराने का स्थान नये द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। ज्वालामुखी के मुख्यत: तीन प्रकार होते हैं। सुसुप्त, कार्यशील और विलुप्त ज्यालामुखी। सुसुप्त ज्वालामुखी वे हैं जो काफी लम्बे समय तक अक्रियाशील रहने के बाद अचानक फट जाते हैं। इनके दुबारा फटने का समय इतना लम्बा होता है कि उतने समय में एक सभ्यता का विकास हो जाय। उदाहरण के लिए अभी हाल ही में फिलीपीन्स में फटा ज्वालामुखी अब से लगभग 600 वर्षों पहले फटा था। इटली में विसुवियस ज्वालामुखी प्रसुप्त ज्वालामुखी का ही एक उदाहरण है। कार्यशील ज्वालामुखी हर समय उद्‌गारित होते रहते हैं तथा इनसे लावा, भाप, धूल हर समय निकलती रहती है। इस तरह के ज्वालामुखी के उदाहरण में प्रमुखतया स्ट्रोमगोली (इटली के नजदीक), सिसली में एटना, इक्वाडोर में कोटोपाक्सी

तथा हवाई में उमनालोवा आदि है। विलुप्त (Extinct) ज्वालामुखी एक बार उद्‌गारित होने के बाद पुनः कभी नहीं उद्‌गारित होते। इनका मुख (क्रेटर) चारों ओर से बन्द हो जाता है और चारों तरफ मिट्‌टी जम जाती है। इस प्रकार के ज्वालामुखियों में प्रमुख रूप से वर्मा में माउण्टपोपा, जापान में फ्यूजीयामा और अफ्रीका में केन्या है।

इन ज्वालामुखी उद्‌गारों के कई कारण बताये गये हैं जो निम्न हैं—पृथ्वी का आन्तरिक भाग अभी भी काफी गर्म है। इस गर्मी के कारण आंतरिक हिस्सों की चट्‌टाने पिघल जाती हैं जिसे मैग्मा कहते हैं। कभी-कभी मैग्मा आंतरिक दबावों के कारण ऊपर आने की कोशिश करता है और जहाँ कहीं भी पृथ्वी की कमजोर सतह होती है वह उसे तोड़कर दरार या छिद्र के माध्यम से पृथ्वी की ऊपरी सतह पर आने लगता है। धीरे-धीरे यह ठंडा होकर ठोस हो जाता है। बार-बार लावा, मैग्मा आदि के निकलने के कारण तथा इकट्‌ठा होते रहने के कारण एक समयांतराल के बाद शंकु का आकार धारण कर लेता है। कभी-कभी समुद्र का जल या वर्षा का जल मिट्‌टी से रिसता हुआ बड़ी गहराई में अन्दर पहुँच जाता है। वहाँ पर यह आंतरिक गर्मी के कारण भाप में बदल जाता है। पानी का यह भाप बाहर निकलने की कोशिश करता है तथा धरती की आंतरिक कमजोर सतहों को तोड़कर बाहर निकलता है तथा अपने साथ चट्‌टानें, धूल, राख, मैग्मा आदि भी बाहर लाता है। इसके अलावा पृथ्वी के अन्दर कुछ आंतरिक शक्तियाँ भी हैं जो अन्दर उपस्थित लावे को बाहर निकलने के लिए दबाव डालती हैं। इस प्रकार मैग्मा जब किसी छिद्र के माध्यम से बाहर आता है तब यह पर्वत बनता है परन्तु जब यह किसी दरार के द्वारा बाहर निकलता है तो पठार का रूप धारण कर लेता है।
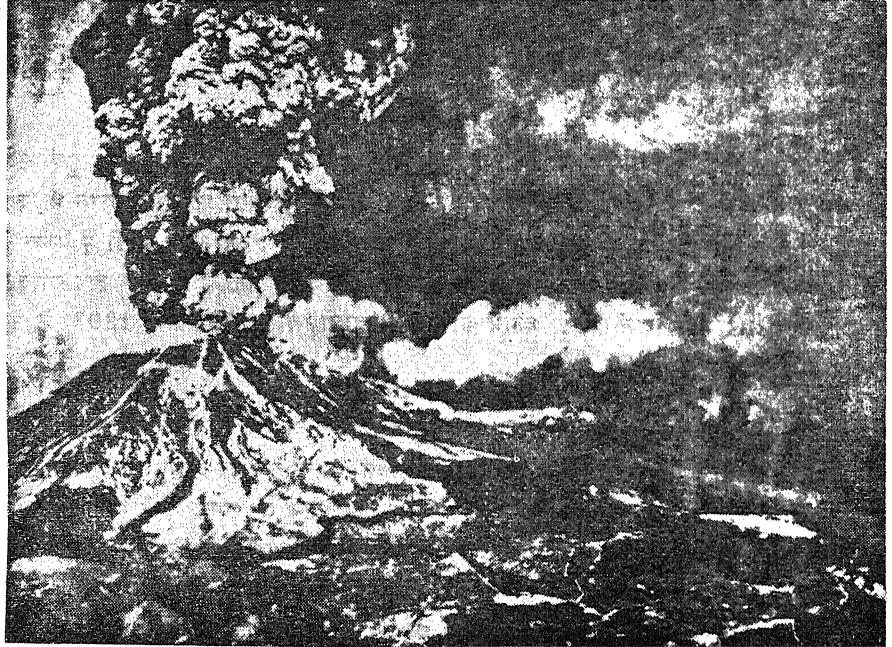
ये ज्वालामुखी उद्‌गार मुख्यतया तीन रूपों में होते हैं। इसका पहला रूप केन्द्रीय उद्भेदन कहलाता है। इसमें किसी एक केन्द्रीय मुख से उद्‌भेदन भारी धड़ाकों के साथ होता है। इसमें भयानक विस्फोटक ध्वनि तथा कम्पन होता है। इस प्रकार के उद्‌भेदनों से भूकम्प आ जाते हैं। ज्वालामुखी उद्‌गार का दूसरा रूप अपस्थावी (Effusive) है। इसमें पृथ्वी के गर्भ से कुछ ही स्थानों पर लावा निकलता है ! उद्भेदन का रूप दरारी उद्‌भेदन है जिसमें लावा भूमि में पड़े अनेक दरारों द्वारा बाहर निकलता है। दक्कन के पठार पर इसी प्रकार के उद्‌भेदन से वेसाल्ट की 1,200 से 1,500 मीटर मोटी तह जमी थी। पृथ्वी पर होने वाले ज्वालामुखी विस्फोटों में पिघले सिलिका की मात्रा ज्यादा होती है, जिसका ताप 1100°-1400° सेन्टीग्रेड तक होता है तथा ज्वालामुखी के बनने के लिए आवश्यक ऊर्जा पृथ्वी की प्रारम्भिक समय में ज्वलनशीलता (Ignition stage) की स्थिति पर निर्भर करती है, जब इसका निर्माण लम्बे समय तक क्रियाशील रहने वाले तत्वों जैसे यूरेनियम, थोरियम तथा पोटैशियम के विघटन से हुआ। ज्वालामुखियों के उद्‌गार हेतु आवश्यक ऊर्जा के लिए यह बात सभी प्लैनेट्स (Planets) पर लागू होती है।

ज्वालामुखी द्वारा निकली गैसों में प्रमुख रूप से अमोनिया, पानी तथा सल्फर और उसके यौगिक होते हैं, जिसके आधार पर ही ज्वालामुखी वैज्ञानिक अन्य ग्रहों पर भी ज्वालामुखी क्रियाओं के बारे में पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने अनुमान लगाया है कि I_0 जो ज्यूपीटर का एक उपग्रह है, वहाँ पर सल्फर और क्रोमेटयुक्त सतह है, जिसमें अचानक दरार पड़ने से सल्फर गैस तथा बर्फ और नारंगी, काली राख ऊपर निकलती है और धीमे-धीमे यह उद्‌गार और बढ़ता जाता है तथा इसके उद्‌गार से उत्पन्न उत्पाद नजदीक के वायुमण्डल में फैल जाते हैं। सल्फर डाइऑक्साइड गैस, बर्फ आदि के अणु 300 किमी० तक वायुमण्डल में फैल जाते हैं। वैज्ञानिक अब इस बात में विश्वास करने लगे हैं कि 12 क्यूबिक किलोमीटर वेसाल्ट के निकजने से वह कई मौसमों तक वायुमण्डल में रह सकता है।

ज्वालामुखी उद्‌गार से निकलने वाली गैसों में प्रमुखतया सल्फर डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, मीथेन तथा कार्बनडाइऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल जैसी गैसें प्रमुख हैं। इयके अलावा इनमें राख तथा अन्य चट्टानों के टुकड़े भी होते हैं। इसके उद्‌गार में निकलने वाले उत्पादों में उन कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जैसे सम्पूर्ण उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में जिसमें बम्बई भी शामिल है, जो लगभग 250,000 किमी०^2 में है, पूर्णतया बेसाल्ट यौगिकों से परिपूर्ण है। इन सारे उत्पादों में गैसें विशेषकर सल्फर डाइऑक्साइड, मीथेन आदि की पर्यावरण में विशेष भूमिका है। सल्फर डाइऑक्साइड अम्ल वर्षा में विशेष भूमिका निभाती है। मीथेन गैस से ओजोन पर्त के निर्माण की प्रक्रिया में सहायता भी मिलती है। इसके अलावा अन्य जहरीली गैसें जैसे कार्बन मोनोऑक्साइड आदि हैं।

सल्फर डाइऑक्साइड वायुमण्डल में पानी के साथ मिलकर सल्फ्यूरिक अम्ल बनाती है। जो वर्षा के द्वारा पृथ्वी पर आती है। यह सल्फर डाइऑक्साइड सल्फ्यूरिक अम्ल के रूप में पौधों पर भी हानिकारक प्रभाव डालती है जैसे क्लोरोफिल की मात्रा का कम होना, कार्बोहाइड्रेड की कमी होना तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में कमी होना आदि। यह सल्फर डाइऑक्साइड 'कोरोसिव' होने के कारण पौधों पर बुरा प्रभाव डालती है। इसके अलावा इन गैसों का प्रभाव ऐतिहासिक महत्व की इमारतों पर भी देखने को मिला है। ताजमहल पर काले-काले धब्बे अम्ल के संक्षारक गुणों के ही परिणाम हैं।

ज्वालामुखी उद्‌गार से निकलने वाली धूल वायुमण्डल में काफी दूर तक और काफी घनी पायी गयी है।

परीक्षण के बाद वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि उद्गार के समय लावा, मैग्मा आदि के निकलने से का तापक्रम अचानक बढ़ने लगता है। यहाँ तक की आग लग जाती है, परन्तु दीर्घकालिक रूप में इ जलवायु पर पड़ता है। वैज्ञानिकों के अनुसार आजकल 'ग्रीन हाउस प्रभाव' की चर्चा की जा रही है। पर मुखी उद्गार से निकलने वाली धूल सूर्य की किरणों को रोककर वायुमण्डल के ताप को घटाने में सहा इस तरह से वैज्ञानिकों ने पाया है कि ज्वालामुखी उद्गार का दीर्घकालिक प्रभाव वायुमण्डल के 'ग्रीन हा को कम करने में सहायक हो सकता है।

ज्वालामुखी से निकलने वाली मीथेन गैस ज्वलनशील होने के कारण आग लगने का कारण ब तथा इसका दूसरा कार्य ओजोन निर्माण में सहायक होना है। इस प्रकार धरती के निकट बनने वाली पौधों तथा मानव के लिए हानिकारक हो सकती है।

$$CH_4+4O_2 \rightarrow H_2O+H_2CO+2O_3$$
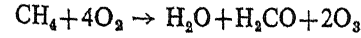
ज्वालामुखी उद्गार हानि के साथ-साथ कुछ लाभों की सम्भावना लेकर आता है इसके द्वारा निकला लावा पर खेती के लिए बहुत उपजाऊ सिद्ध होता है। इसके अलावा जब इनके मुख (Crater) पानी से भर जाते हैं का निर्माण होता है तथा बहुत से खनिज जो मिट्टी की गहराई में पाये जाते हैं वे ऊपरी सतह पर आ जाते अलावा लावा के द्वारा बहुत से जीवाश्म (Fossils) सुरक्षित कर दिए गए हैं जो पुराजीवन के बारे में जान हैं। इनके द्वारा निकली भाप और गैसों से बहुत से लाभदायक काम भी किये जाते हैं जैसे भाप द्वारा टरबाइन विद्युत्-निर्माण आदि। उदाहरण के लिए 'वैली ऑव टेन थाउजेन्ड स्मोक' में कई लाख गैसीय धारायें नि जिससे वायुमण्डल में प्रायः 230 लाख लीटर प्रति सेकेण्ड भाप, 12 लाख टन हाइड्रोक्लोरिक एसिड (तेजाब) और 2-2.5 लाख टन हाइड्रोजन क्लोराइड निकलती है, जिसका उपयोग तरह-तरह से होता है। ज विस्फोटों के विनाशकारी पक्ष पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। इस प्रकार ज्वालामुखी विनाश के साथ भी हैं। ● ●

सुनामी उत्पात

○डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र○

समुद्रतट पर रहने वालों को समुद्री लहरों की विनाश-लीला का थोड़ा-बहुत परिचय है। समुद्र ज्वारीय लहरें आती-जाती रहती हैं। कभी-कभी तूफानों या चक्रवातों के प्रभाव से ये लहरें दूर-दूर तक स्थली में प्रवेश कर जाती हैं किन्तु हम जिन लहरों का उल्लेख करने जा रहे हैं वे बहुत ही विशाल एवं भयंकर हो इन्हें सुनामी (Tsunami) कहते हैं। कभी-कभी भ्रमवश इन्हें ज्वारीय तरंगें मान लिया जाता है।

निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

परीक्षण के बाद वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि उद्गार के समय लावा, मैग्मा आदि के निकलने से वायुमण्डल का तापक्रम अचानक बढ़ने लगता है। यहाँ तक की आग लग जाती है, परन्तु दीर्घकालिक रूप में इसका प्रभाव जलवायु पर पड़ता है। वैज्ञानिकों के अनुसार आजकल 'ग्रीन हाउस प्रभाव' की चर्चा की जा रही है। परन्तु ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाली धूल सूर्य की किरणों को रोककर वायुमण्डल के ताप को घटाने में सहायक होगी। इस तरह से वैज्ञानिकों ने पाया है कि ज्वालामुखी उद्गार का दीर्घकालिक प्रभाव वायुमण्डल के 'ग्रीन हाउस प्रभाव' को कम करने में सहायक हो सकता है।

ज्वालामुखी से निकलने वाली मीथेन गैस ज्वलनशील होने के कारण आग लगने का कारण बन सकती है तथा इसका दूसरा कार्य ओजोन निर्माण में सहायक होना है। इस प्रकार धरती के निकट बनने वाली ओजोन गैस पौधों तथा मानव के लिए हानिकारक हो सकती है।

$$CH_4+4O_2 \rightarrow H_2O+H_2CO+2O_3$$
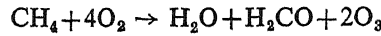
ज्वालामुखी उद्गार हानि के साथ-साथ कुछ लाभों की सम्भावना लेकर आता है इसके द्वारा निकला लावा ठन्डा होने पर खेती के लिए बहुत उपजाऊ सिद्ध होता है। इसके अलावा जब इनके मुख (Crater) पानी से भर जाते हैं तो झीलों का निर्माण होता है तथा बहुत से खनिज जो मिट्टी की गहराई में पाये जाते हैं वे ऊपरी सतह पर आ जाते हैं। इसके अलावा लावा के द्वारा बहुत से जीवाश्म (Fossils) सुरक्षित कर दिए गए हैं जो पुराजीवन के बारे में जानकारी देते हैं। इनके द्वारा निकली भाप और गैसों मे बहुत से लाभदायक काम भी किये जाते हैं जैसे भाप द्वारा टरबाइन चलाकर विद्युत्-निर्माण आदि। उदाहरण के लिए 'वैली ऑव टेन थाउजेन्ड स्मोक' में कई लाख गैसीय धारायें निकलती हैं जिससे वायुमण्डल में प्राय: 230 लाख लीटर प्रति सेकेण्ड भाप, 12 लाख टन हाइड्रोक्लोरिक एसिड (नमक का तेजाब) और 2·2.5 लाख टन हाइड्रोजन क्लोराइड निकलती है, जिसका उपयोग तरह-तरह से होता है। ज्वालामुखी विस्फोटों के विनाशकारी पक्ष पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। इस प्रकार ज्वालामुखी विनाश के साथ वरदान भी हैं। ● ●

सुनामी उत्पात

○डॉ० शिवगोपाल मिश्र○

समुद्रतट पर रहने वालों को समुद्री लहरों की विनाश-लीला का थोड़ा-बहुत परिचय है। समुद्र में सदैव ज्वारीय लहरें आती-जाती रहती हैं। कभी-कभी तूफानों या चक्रवातों के प्रभाव से ये लहरें दूर-दूर तक स्थलीय-प्रदेश में प्रवेश कर जाती हैं किन्तु हम जिन लहरों का उल्लेख करने जा रहे हैं वे बहुत ही विशाल एवं भयंकर होती हैं। इन्हें सुनामी (Tsunami) कहते हैं। कभी-कभी भ्रमवश इन्हें ज्वारीय तरंगें मान लिया जाता है।

निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

सुनामी शब्द जापानी भाषा का है जिसका अर्थ है "बन्दरगाह की लहर"। यह नाम सार्थक हैं क्योंकि विगत 300 वर्षों में जापान में कम से 15 बार इन लहरों की विनाशलीला देखी जा चुकी है। ये लहरें प्रशान्त महासागर (Pacific ocean) के तटों तक ही सीमित हैं।

ये संहारक लहरें समुद्र के गर्त से उठती हैं और प्रति घंटे 1000 मील की गति से यात्रा कर सकती हैं। किन्तु इस गति का अनुभव उन जहाजों को नहीं हो पाता जो इनमें होकर चलती रहती हैं। समुद्र में इन तरंगों की ऊँचाई मुश्किल से 3 फुट (एक मीटर) होती है किन्तु उथले किनारों पर पहुँचते-पहुँचतते पानी की दीवाल खड़ी हो जाती है—कभी-कभी 80 फुट ऊँची। जरा कल्पना कीजिए उन द्वीपों की जो प्रशान्त महासागर के बीच में स्थित हैं। आप पूछ सकते हैं कि अतलांतक सागर या अन्य सागरों में ये लहरें क्यों नहीं उठतीं ? इसका उत्तर आगे मिल जावेगा।

इन लहरों की उत्पत्ति समुद्र तल के नीचे छिपे ज्वालामुखी के विस्फोट के कारण विशाल क्षेत्र वाली समुद्री फर्श के आकस्मिक ऊर्ध्वाधर चालन के कारण होती है। समुद्री फर्श में उथल-पुथल होने से आस-पास का पानी भीषण गति से विक्षुब्ध हो उठता है। यह पानी चक्कर काटने लगता है जिससे आघात तरंगें (Shock Waves) उत्पन्न होती हैं जो चारों दिशाओ में दौड़ पड़ती हैं। यत घटना उसी तरह की है जैसी कि एक शान्त तालाब की सतह पर कंकड़ फेंकने से होती है—विक्षोभ से लहरियों की श्रेणी उत्पन्न हो जाती है।

गहरे जल में सुनामी की की आघात तरंगों की श्रेणी (अनुक्रम) इतनी दूर-दूर होती है—प्रायः 165 किलो मीटर दूर की घंटों लग जाते हैं एक के बाद दूसरी तरंग के पहुँचने में। इन तरंगों में प्रभूत ऊर्जा रहती है। यही नहीं, उथले जल में इनकी गति जल की गहराई के वर्गमूल के समानुपाती होती है। जब सुनामी किनारे के पास पहुँचती है तो जल की गहराई कम होने से (उथलेपन होने के कारण) तरंगों का अग्रचालन अत्यधिक सीमित हो जाता है। साथ ही तरंगें ऊँची और पास-पास होती जाती हैं। उदाहरणार्थ गहरे जल में 3 फुट ऊँची तरंग 500 मील प्रति घंटे की गति से यात्रा करते हुए समुद्र तट तक पहुँचते-पहुँचते 100 फुट ऊँची हो जाती है और उसकी गति केवल 50 मील प्रति घंटे रह जाती है। देखते-देखते पानी की दीवार खड़ी हो जाती है जिसका भार इतना होता है कि समुद्र तट की इमारतें ढह जाती हैं।

सुनामी तथा ज्वालामुखी से उत्पन्न पृथ्वी कम्पन में अन्तर है। पृथ्वी कम्पन से भ्रंश वाले स्थान के आस-पास विनाशलीला होती है किन्तु सुनामी से स्थानीय तथा दूर-दूर तक विध्वंस-लीला देखी जाती है।

स्पष्ट है कि भूकम्प से उत्पन्न होने वाली ये लहरें असाधारण एवं मारक लहरें हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी तट में 10-16 फुट ऊँची सुनामी लहरें उत्पन्न होती हैं। अलास्का तथा हवाई द्वीप समूह में भी सुनामी से गम्भीर क्षतियाँ होती रही हैं। हवाई द्वीप तो सुनामियों का घर है। प्रशान्त महासागर में उठने वाली 10 प्रतिशत सुनामियाँ यहीं उठती हैं। 1819 ई० से अब तक 100 सुनामियाँ उठ चुकी हैं जिनमें से 16 से अत्यधिक क्षति पहुँची है—किन्तु ये सुनामियाँ दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट में उत्पन्न होती हैं। फिलिपीन्स, इंडोनेशिया आदि में उत्पन्न सुनामिओं की रिकार्डिंग हवाई द्वीप में की गई है किन्तु वे क्षति कारक नहीं होतीं। अनुमान है कि सुनामी द्वारा हुई लोगों की मृत्यु भूकम्प से होने वाली मृत्यु की संख्या से अधिक है। इससे सम्पत्ति की बहुत हानि पहुँचती है—करोड़ों का वारा-न्यारा हो जाता है। भूमि-क्षरण, बाढ़, कंकड़-पत्थर का जमाव अन्य क्षतियाँ हैं।

1967 ई० में चिली तट पर जो ज्वालामुखी विस्फोट हुआ उसके फलस्वरूप हवाई द्वीप के हजारों घर ध्वस्त हो गये और वही सुनामी फिलिपीन्स, ओकिनावा, जापान तथा चिली में भी प्रभावशाली रही जिससे 1000 लोग मारे गये। जापान में 1896 ई० में सुनामी से 27000 लोग मरे। 1883 ई० में क्राकाटोआ में जो ज्वालामुखी विस्फोट हुआ उससे उत्पन्न लहरें पूरे भूमण्डल में दो-तीन बार घूम आईं और जावा तथा सुमात्रा में 36500 लोगों को डुबो दिया।

क्या इन्हें रोका जा सकता है? नहीं, हाँ क्षति कम करने के लिए कुछ घंटे पूर्व चेतावनी दी जा सकती है। 1946 में हवाई द्वीप में इतनी जन तथा धन की हानि हुई कि अमेरिका को बाध्य होकर सुदामी चेतावनी प्रणाली की स्थापना करनी पड़ी। सुनामी संकट मानचित्र बनाकर 20, 50 तथा 100 वर्षों तक प्रेक्षण किये जा सकते हैं। तदनुसार समुद्रीतट पर कटिबन्धों का निर्माण किया जा सकता है। ये कटिबन्ध सुनामी की महत्तम ऊँचाई को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं। लहरों की ऊँचाई मापने के लिए समस्त लहरों को गिना जाता है और जितनी सबसे ऊँची लहरें होती हैं उनकी एक तिहाइ लहरों की औसत ऊँचाई को लहर ऊँचाई कहा जाता है। इसके लिए कम्प्यूटरों की सहायता ली जाती है।

कृत्रिम सुनामियाँ

अनुमान है कि महाद्वीपीय शेल्फ पर स्थित 20 किमी० चौड़ा तथा 200 मीटर मोटा खंड नीचे की ओर स रके तो उससे 500 मेगाटन टी० एन० टी० के विस्फोट के तुल्य ऊर्जा उत्सर्जित होगी। यदि इस तरह से उत्पन्न सुनामी को किसी तटीय देश के नौ सैनिक बन्दरगाह की ओर निर्देशित कर दिया जाय तो उससे हुई हानि वर्णनातीत हो सकती हैं।

कृत्रिम सुनामी को न्यूक्लीय विस्फोटों की शृंखला द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। कुछ बडे-बडे भूकम्पों की ऊर्जा 50 मेगाटन बम के बिस्फोट के द्वारा उत्पन्न ऊर्जा के बराबर होती है और यह ऊर्जा रुद्र रूप धारण करके 1000 किमी० तक जा सकती है। मुख्य भूकम्प कटिबन्ध जापान के पश्चिमी समुद्र तट से उत्तरी अमेरिका तक प्रशान्त महासागर से गुजरता है। एक गौण कटिबन्ध भूमध्य सागर से भारतीय उपमहाद्वीप होते हुए इंडोनेशिया तक जाता है। यही पूरा क्षेत्र सुनामी-क्षेत्र है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भूकम्पों का प्रवर्तन छोटे-छोटे न्यूक्लीय बमों के छोटे-छोटे बिस्फोटों द्वारा सम्भव है जिनका लक्ष्य छोटे-छोटे भ्रंशों से ऊर्जा का उन्मोचन करना होता है। यदि ऐसे विस्फोट चीन या फिलीपीन्स महासागर में किये जायँ तो प्रशान्त महासागर के भूकम्प तथा कटिबन्ध को इस तरह परिवर्तित किया जा सकता है कि लासऐंजिलिस तथा सैन फ्रांसिस्कों में भूकम्प आये जिससे एक प्रलयंकारी सुनामी उत्पन्न हो सके। निस्सन्देह मनुष्यकृत सुनामी महाक्रूर होगी—इसका लक्ष्य नियन्त्रित विनाश होगा। ● ●

भू-स्खलन तथा इसे रोकने के उपाय

○दिनेश मणि○

पृथ्वी एक गतिशील पिंड हैं अतः इसमें लगातार कम्पन तो होते ही रहते हैं। किन्तु अधिकांश कम्पन बहुत हल्के होते हैं और उनका पता ही नहीं चलता। जब ज्वालामुखी से उद्गार निकलते हैं तब भी पृथ्वी की सतह पर कम्पन होते हैं। इसके अतिरिक्त चट्टानों के खिसकने (Land-slides), बम फटने (Blasting) अथवा भारी वाहनों और रेल गाड़ियों की तीव्रगति से भी कम्पन पैदा होते हैं।

भू-स्खलन का सामान्य अर्थ विभिन्न प्रकार की चट्टानों, मिट्टियों के खिसकने तथा इनके नीचे की ओर स्थानांतरित होने से है। पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद से आज यदि कहीं, कभी, किसी प्रकार का भू-स्खलन नहीं हुआ होता तो धरातल का वर्तमान रूप निश्चित ही देखने को नहीं मिलता। जिस समय पृथ्वी के ठोस धरातल का निर्माण हुआ था, उस समय उस पर पर्वत, पठार, मैदान या महासागर कुछ भी नहीं था। इसका रूप सब जगह एक समान सपाट था। कालांतर में भू-पपड़ी की आंतरिक शक्तियों द्वारा पृथ्वी पर इन सब का निर्माण हुआ।

शैलों के स्थानान्तरण की विशाल संख्या का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् भू-वैज्ञानिकों ने इसे निम्न मुख्य वर्गों में रखा है—

(1) प्रथम वर्ग लघु स्थानान्तरण कहलाती है। इस वर्ग के स्थानान्तरण में केवल ढाल के सतही भाग के शैल भाग लेते हैं। मिट्टी की तहों तथा अधःस्थ अपक्षापित शैलों का अपने स्थानों से खिसकना लघु स्थानांतरण क्रिया के अन्तर्गत आता है। वायुमण्डल से ये पदार्थ नमी खींचते रहते हैं और समयांतर से ढाल से नीचे की ओर फिसलने लगते हैं। इस श्रेणी की गतियों को भूमि सर्पण की संज्ञा दी जाती है।

(2) जब शैलों का विशाल द्रव्यमान ढाल के सहारे नीचे की दिशा में फिसलता है तो इस गति को भू-स्खलन कहते हैं। इस गति में सतह तथा गहराइयों में स्थित विभिन्न प्रकार के शैल भाग लेते हैं।

(3) शैलों के विशाल द्रव्यमानों का अकस्मात् नीचे धँसना तथा इसी क्रिया में शैलों के टुकड़े-टुकड़े होकर चारों ओर बिखरना अपधाव कहलाता है। इस तरह की घटनायें प्रायः तरुण पर्वतीय अंचलों में होती हैं। इन स्थानों में जल शैल-पिंडों में प्रविष्ट होकर उन्हें निर्बल बनाता है तथा उन पिंडों के गतिमान होने की परिस्थिति उत्पन्न करता है।

वर्नेज, 1978 के अनुसार भू-स्खलन को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है—

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

भू-स्खलन का वर्गीकरण (वर्नेज, 1978)

		पदार्थ का प्रकार	
		मिट्टी	
स्खलन का प्रकार	चट्टान	मोटे आकार की (डेब्रिस)	महीन आकार की (मिट्टी)
फाल	रॉक फाल	डेब्रिस फाल	अर्थ फाल
टॉपिल	रॉक टॉपिल	डेब्रिस टॉपिल	अर्थ टॉपिल
स्लाइड	रॉक-ब्लाक-स्लाइड	डेब्रिस-ब्लाक-स्लाइड	अर्थ-ब्लाक-स्लाइड
रोटेशनल	रॉक स्लम्प	डेब्रिस स्लम्प	अर्थ स्लम्प
ट्रान्सलेशनल	रॉक स्लाइड	डेब्रिस स्लाइड	अर्थ स्लाइड
लेटेरल स्प्रीड	रॉक स्प्रीड	डेब्रिस स्प्रीड	अर्थ स्प्रीड
फ्लो	रॉक फ्लो	डेब्रिस फ्लो	अर्थ फ्लो
काम्पलेक्स			

उपर्युक्त दो या दो से अधिक का संयोजन

भू-स्खलन के कारण

भू-स्खलन होने के कई कारण हैं—तटों की प्रवणता तथा उनकी भू-वैज्ञानिक संरचना, अधोभूमि जलों का बाहर निकलना,जलाशयों, नदियों आदि में जल स्तर का घटना-बढ़ना आदि । भू-स्खलन की प्रत्येक घटना में इन सभी कारकों का भिन्न क्रमचय तथा संचय रहता है । विभिन्न निर्माण कार्यों जैसे नहरों, बाँध, जल संभरणों आदि द्वारा भी भू-स्खलन होता है ।

(1) भू-स्खलन के कई मुख्य कारणों में एक कारण नदी द्वारा तट को नीचे से काटना अथवा समुद्र द्वारा इसका अपघर्षण है । उग्र रूप से तट का नीचे-नीचे ही काटा जाना ढाल का प्रावण्य बढ़ा देता है जिसके फलस्वरूप इस पर पड़ने वाला दाब भी बढ़ जाता है और यह अस्थिर हो जाता है ।

(2) तलोच्छेदन जलभृत में जल के बहने के कारण होता है । ढाल की सतह पर बाहर निकलते हुए अधोभूमि जल अपने साथ जलभृत के शैलों के छोटे-छोटे कम तथा अन्य विलेय पदार्थों को घुलाकर बाहर ले आते हैं । अधिक समय तक ऐसी प्रक्रिया के होने का परिणाम यह होता है कि जलभृत-संस्तर में निर्बलता तथा अदृढ़ता आ जाती है ।

(3) अधोभूमि तथा पृष्ठीय जलों तथा अपक्षयण प्रक्रियाओं के कारण ढाल के मृणाय शैलों की अवस्था में परिवर्तन भी भू-स्खलन का कारण हो सकता है । ढाल की सतह में यदि मृत्तिका अनावरित हो जाये तो विविध बाध्य कारकों तथा अपक्षयण प्रक्रिया के कारण यह शुष्क हो जाएगी और अन्त में इसमें दरारें बनने लगेंगी । मृत्तिका की एकान्तर से नम होने की तथा सूखने की क्रियायें दरारों के

विकास को तीव्रतर कर देती हैं और इसके संसंजन को पूर्ण रूप से नष्ट कर देती हैं। जल के सम्पर्क में आकर मृत्तिका संतृप्त होकर बहने की अवस्था में आ जाती है और नीचे सरकने लगती है तथा अपने साथ अन्य शैलों को भी सरकाकर नीचे ले जाती है।

(4) अधोभूमि जलों के द्रवगतिक दाब का भी प्रभाव ढाल की अवस्था पर पड़ता है, उन्मुक्त क्षेत्र की ओर बहते हुए अधोभूमि जलधारक रचिति के उस भाग पर अत्यन्त ही अधिक परिमाण में द्रवगतिक दाब उत्पन्न कर सकता है जो भाग ढाल की सतह में इसके दृश्यांश के निकट है। अधिक परिमाण में उत्पन्न हुए द्रवगतिक दाब की अभिव्यक्ति ढाल के समीप स्थित जलभृत संस्तर के भाग के हठात बाहर निकलने तथा सम्पूर्ण ढाल के नीचे सरकने में होती है।

बड़े भू-स्खलन, विशाल सर्क (या अर्द्धसर्क कहना अधिक उचित होगा) का निर्माण करते हैं और ये सर्क (अर्द्धसर्क) तट के अन्दर दूर तक फैले होते हैं। ये ढाल के अपेक्षाकृत अधिक स्थायी भागों के साथ एकांतर से पाये जाते हैं और इस तरह एक प्रकार के बहिःक्षेपों का निर्माण होता है जिन्हें 'अन्तर्भूस्खलन मेंड़' कहते हैं। साधारणतया भू-स्खलन होने के पहले वक्रादार दरार या कई दरारें तटवर्ती ढाल से ऊपर स्थित स्थानों में परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार इन दरारों को भू-स्खलन का पूर्वगामी कह सकते हैं। समयान्तर से इन दरारों की चौड़ाई बढ़ती जाती है और ढाल का पृथक होने वाला भाग नीचे सरकने लगता है। भू-स्खलन प्रक्रियाओं के कारण बनने वाली प्रारूपिक स्थल-रूपरेखा के अतिरिक्त वृक्षों की सामान्य स्थितियाँ भी भू-स्खलन प्रक्रियाओं का सूचक हैं। शैलों के स्थानान्तरण की प्रक्रिया के दौरान ये वृक्ष अपनी खड़ी स्थिति खोने लगते हैं तथा इनमें टेढ़ापन आने लगता है। इसके अतिरिक्त इन वृक्षों में दरारें भी परिलक्षित होती हैं। वृक्षों की स्थितियों में इस प्रकार के परिवर्तन मास्को में फिली नामक पार्क में, क्रीमिया के दक्षिणी क्षेत्र में तथा अन्य स्थानों में देखे गये हैं। इस प्रकार के जंगल को "मदोन्मत्त जंगल" की संज्ञा दी जाती है।

भू-स्खलन के प्रभाव

बहुधा भूकम्प के कारण भी शैल-अपधाव होता पाया जाता है। कभी-कभी इस क्रिया में अत्यन्त ही विशाल शैल-पिंड भाग लेते हैं। उदाहरण के लिए, पामीर में 1711 ई० में 7 से 8 मिलियन टन का शैल-पिंड नीचे धँसकर गिर गया जिससे एक नदी अवरूद्ध हो गयी और इस प्रकार लगभग 80 किलोमीटर लम्बी सेरेज झील का निर्माण हुआ। प्रकृति ने इस प्रकार स्वयं प्राकृतिक बाँध का निर्माण कर दिया जो लगभग 600 मीटर ऊँचा, 2 किमी० लम्बा तथा इसका आधार 5 किमी० चौड़ा था।

भू-स्खलन कभी-कभी जनजीवन के लिए अत्यन्त ही हानिकारक होता है इससे लोगों की जानें भी जाती हैं। आबादी वाले क्षेत्रों में होने वाले भू-स्खलन पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है। इसके कारण रेल की पटरियाँ उखड़ सकती हैं अथवा टेढ़ी हो सकती हैं। बड़े पैमाने पर भू-स्खलन होने पर, जिसमें पृथ्वी की सतह के नीचे गहराई में स्थित शैल-समूह भाग लेते हैं। समुद्र, झील अथवा नदियों के तटों पर स्थित ढलानों में व्यापक परिवर्तन आ जाता है तथा इनकी समाकृति विशेष रूप की हो जाती है।

भू-स्खलन से निर्मित इमारतों के ढहने, उर्वर भूमि तथा जंगलों से नष्ट होने से भी काफी आर्थिक नुकसान होता है।

भू-स्खलन को रोकने के उपाय

जान-माल को क्षति पहुँचाने वाली तथा जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देने वाली भू-स्खलन प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करना अनिवार्य है। भू-स्खलन की रोकथाम के लिए भिन्न परिस्थितियों में भिन्न कदम उठाये जाते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि भू-स्खलन प्रक्रियायें किन कारणोंवश हो रही हैं। कभी-कभी भू-स्खलन की रोकथाम के हेतु प्रपाती प्रवण वाले स्थानों का प्रावण्य कम कर दिया जाता है और इस प्रकार सीधी ढाल मंद ढाल में परिणित हो जाती है। कभी-कभी ढालों के आधार में कंक्रीट की दीवारें खड़ी की जाती हैं। इस प्रकार की दीवारें भू-स्खलन के प्रभाव से अछूते रहने वाले तल-शैलों में खड़ी की जाती है और ढाल तथा दीवार के बीच का स्थान मोटे बालूओं तथा कंकड़ों द्वारा भर दिया जाता है। इस भराई से लाभ यह होता है कि ढाल के अन्दर से निकलने वाले अधोभूमि जल बालू तथा कंकड़ों की तहों द्वारा रोक लिए जाते हैं और ये तहें इस जल को बहाकर फेंक देने में सहायक होती हैं। इस प्रकार जल की दाब-शीर्ष अस्तित्व में आ नहीं पाता।

नदी अथवा समुद्र द्वारा तट के नीचे काटे जाने की क्रिया की उग्रता से तट की सुरक्षा के हेतु जल नियन्त्रण करने वाली विकास कुल्माओं तथा तरंगरोधों का निर्माण करते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ भू-स्खलन का प्रधान कारण ढालों की सतह पर पृष्ठीय जलों के नियन्त्रण के लिए गड्ढे खोदे जाना है, जहाँ जल संचित होते हैं और तब इन्हें पहले से ही निश्चित की हुई दिशा में बाहर बहा दिया जाता है। अधोभूमि जलों की क्रिया से सुरक्षा के लिए भूमिगत गैलरियों का निर्माण करते हैं। ये गैलरियाँ अधोभूमि जलों को ऊपर आने नहीं देतीं तथा साथ ही साथ खतरे के स्थान से दूर इन जलों को बहा ले जाती हैं।

स्मरण रहे, भू-स्खलन के लिये उत्तरदायी भौतिक कारणों को दूर नहीं किया जा सकता। इस दिशा में किये गये अध्ययनों से पता चला है कि भू-स्खलन से होने वाली अधिकतर हानि मानव जनित होती है। अतः भूमि उपयोगों को नियमित करके, जल-निकास (Drainage) तथा अपधावन (run-off) को नियन्त्रित करके भू-स्खलन को कुछ हद तक रोका जा सकता है। ● ●

फैलने वाली मिट्टियों का पर्यावरण पर प्रभाव

○अजय कुमार बरनवाल○

मृदा किसी भी देश की एक बहुत बड़ी आधारभूत प्राकृतिक सम्पदा होती है। मृदा की अनेक किस्में होती हैं। इन्हीं किस्मों में कुछ मृदायें फूलने-सिकुड़ने वाली होती हैं। मृदा में फूलने-सिकुड़ने की यह क्रिया नमी परिवर्तन के कारण होती है। ऐसी मृदाओं का रंग प्रायः गहरे-भूरे रंग से लेकर काले रंग तक होता है इसीलिए ऐसी मृदाओं को काली या रेगर मृदा (Black or Regur Soil) कहते हैं।

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

मृदाओं के फैलने और सिकुड़ने के कारण परोक्ष या अपरोक्ष रूप से क्षति पहुँचती है। इनमें मकानों का धँसना, टूटना, गिरना, सड़क का बैठ जाना, बड़े-बड़े बाँधों का टूट या धँस जाना; रेलों की पटरियों के नीचे की जमीन धँसने से पटरियों का टेढ़ी हो जाना प्रमुख है। रेल की पटरियों के टेढ़ी हो जाने से बरसात के दिनों में ट्रेनदुर्घटनों की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं। कभी-कभी इन मृदाओं में जल की मात्रा अधिक होने पर ये काफी फूल जाती हैं, जिससे इनमें विशालकाय हाथियों के फँस कर अंततः उनकी मृत्यु भी हो जाती है। वास्तविकता यह है कि एक बार इनमें फँस जाने के बाद निकल पाना असम्भव सा हो जाता है। इस प्रकार ऐसी मृदाओं मे जान-माल की काफी क्षति उठानी पड़ती है। एक सूचना के अनुसार सन् 1973 में संयुक्त राज्य में फैलने वाली मिट्टियों से लगभग 2 बिलियन डॉलर की क्षति हुई थी। यह क्षति घरों, व्यापारिक भवनों, सड़कों, हवाई अड्डों और अन्य प्रकार की संरचनाओं के क्षतिग्रस्त हो जाने से हुई थी। पुराने भवनों के टूटने के कारण नये भवन (लगभग 250,000 की संख्या में) बनाने पड़े थे, जिसमें लगभग 8 बिलयन डॉलर खर्च हुआ था (Krohn and Sloson, 1980)। फैलने वाली मृदायें खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं। ऐसी मिट्टियों में जल की मात्रा अधिक होने से इनकी जुताई-गुड़ाई करना असम्भव-सा हो जाता है। ऐसी मिट्टियाँ भारी होती हैं और इनकी संरचना खराब होतीं है। इसके विपरीत सूख जाने पर ये काफी कडी हो जाती हैं। यदि किसी प्रकार ऐसी मिट्टियों में खेती कर ली जाये तो फसलों की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।

इन मृदाओं के निर्माण के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार तमिलनाडु और गुजरात के कुछ भागों में मिट्टी उत्पत्ति प्राचीन काल के लैगूनों में नदियों द्वारा लाये गये लावा के जमाव से हुआ है। किन्तु एक अन्य वैज्ञानिक क्रेब (Kreb) का कथन है कि यह मिट्टी मुख्यतः परिपक्व मिट्टी है। इसका निर्माण भूतल की विशेषताओं एवं जलवायु सम्बन्धी कारणों से हुआ है, न कि लावा की चट्टानों द्वारा। इन विद्वानों के अनुसार यह मिट्टी उन्हीं क्षेत्रों में मिलती हैं, जहाँ वर्षा की मात्रा 50 से 75 सेमी० तक होती है और जहाँ वर्षा वाले दिनों में वर्षा का औसत 30 से 50 सेमी० तक होता है। किन्तु आधुनिक मान्यता यह है कि ये मिट्टियाँ ज्वालामुखी-विस्फोट से निकले हुए लावा के जम जाने से बनी हैं।

इस प्रकार की मिट्टियाँ 10° से 25° उत्तरी अक्षांश और 37° से 80° पूर्वी देशान्तरों के बीच पायी जाती हैं। भारत के क्षेत्रफल के लगभग पाँचवें भाग पर मुख्यतः काली या उससे मिलते-जुलते रंग की मिट्टी पायी जाती है। ये गुजरात से अमरकंटक और बेलगाँव से गुना तक लगभग 5 1/2 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं। महाराष्ट्र के केधिकांश भाग (विदर्श, खान देश, मराठवाड़ा), गुजरात (सूरत, बड़ोदरा और भंरूच जिलों में) के मध्य-वर्ती और पश्चिमी मध्य प्रदेश (मुख्यतः नर्मदा की घाटी के कुछ भाग, विंध्याचल पर्वत और सतपुड़ा के पठार पर), उड़ीसा के दक्षिणी भाग, कर्नाटक के उत्तरी जिलों (बीजापुर, गुलबर्गा, बीदर, बेलगाँव, धारवाड़, रायचूर जिलों), आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी और तटवर्ती भाग (आदिलाबाद, वारंगल, खम्माम, महबूग नगर और कर्नूल जिलों) तमिलनाड (सलेम, दक्षिणी अर्काट, रामनाथपुरम्, कोयम्बटूर तथा तिरूनलवैली जिलों), राजस्थान (बूंदी, कोटा, झालावाड़ और टोंक जिलों) तथा उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर संभाग (जालौन, हमीरपुर, बाँदा और झाँसी जिलों) में मिलती हैं।
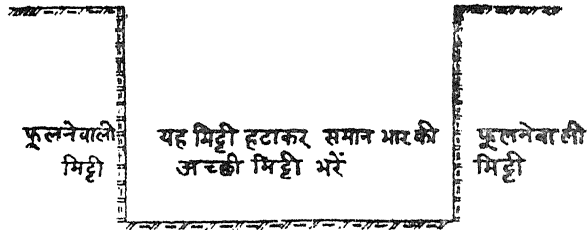
इस मिट्टी का क्षेत्र भारतवर्ष के अलावा संसार के अन्य देशों में भी बहुतायत से मिलता है। इस मिट्टी से प्रभावित मुख्य देशों के नाम इस प्रकार हैं—रूस, अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, इजराइल, स्पेन, जावा, सुमात्रा, आस्ट्रेलिवा, ब्रह्मदेश, कनाडा, इथोपिया, ईरान, मैक्सिको, जिम्बाब्वे, तुर्की, घाना व अर्जेन्टाइना, सूडान, मोरक्को, इण्डोनेशिया आदि।

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों के सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है है कि भूमि में इस मिट्टी की गहराई एक जैसी नहीं है। यह मिट्टी पृथ्वी की सतह से लगभग 8-10 मीटर की गहराई तक भी पाई जाती है। अधिक गर्मी होने पर मिट्टी की नमी कम हो जाती है, और सूखकर चिटक जाती है। इस प्रकार भूमि में 5 सेमी० 15 सेमी० से भी अधिक चौड़ी तथा दो-दो, तीन-तीन मीटर गहरी दरारें पड़ जाती हैं, किन्तु बरसात के दिनों में अधिक पानी मिलने के कारण भूमि सामान्य सी दीखने लगती है। भूमि का ऐसा तट चलन इस प्रकार की मिट्टी में मान्टमोरिल्लोनाइट खनिज के कारण होता है।

काली या अन्य इसी प्रकार की फूलने तथा सिकुड़ने वाली मिट्टियों पर बनी संरचनाओं (भवनों) के चिटक जाने का कारण उस मिट्टी का सापेक्ष चलन ही हैं। यह सापेक्ष चलन मिट्टी के अन्दर रुके हुए जल के कम या ज्यादा होने पर निर्भर करता है। चूंकि यह तल चलन किसी भी संरचना में एक जैसा नहीं होता, इसीलिए इन संरचनाओं में ऐंठन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस ऐंठन के कारण मृदा में जगह-जगह चिटकन शुरू हो जाती है, जिससे बड़ी-बड़ी दरारों का निर्माण हो जाता है।

इस प्रकार की मिट्टियों में आयतन परिवर्तन विभिन्न प्रकार के कारकों पर निर्भर करता है। ये कारक ही दरारों की चौड़ाई में अन्तर पैदा करते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारक नमी है, जो दरारों के बनने में सहायक सिद्ध होती है। मृदा में नमी की अधिकता होने पर यह फूलती है। इससे इनके आयतन में भारी बृद्धि होती है, किन्तु नमी की कमी होने पर इनमें सिकुड़न होने लगती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये क्रियायें नमी की मात्रा पर निर्भर करती हैं। आयतन में परिवर्तन को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है—

Coefficient of Linear Extensibility (COLE) or Potential Volume Change (PVC or Swell Index)

$$COLE=\frac{Lm}{Ld}-1$$

Lm is the length of moist soil and
Ld is the length of the dry soil sample.

COLE की मात्रा 0.09 से अधिक होने की दशा में पूर्णरूप से फैलने-सिकुड़ने वाली प्रक्रिया की सम्भावनायें काफी अधिक होती हैं। सामान्यतया COLE की मात्रा 0.03 से अधिक होने पर उस मिट्टी में मान्टमोरिल्लोनाइट या फैलने वाली मिट्टी की मात्रा पूर्णरूप से उपस्थित होती है।

जलवायु भी एक प्रभावी कारक है। सूखी जलवायु होने पर मिट्टी के सूखने की क्रिया तेज हो जाती है जबकि आर्द्र जलवायु मिट्टी को बनाये रखने में सहायक होती है। भूमि में पानी के उतार चढ़ाव से भी आयतन परिवर्तन पर असर पड़ता है। जल का भूमि तल के पास होने पर मिट्टी के फूलने की क्रिया को बढ़ावा मिलता है। पानी के निकास का प्रभाव भी संरचना के ऊपर पड़ता है। यदि जल निकास अच्छी तरह से नहीं होता है तो नमी की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे फूलने वाली क्रिया तेजी से होती है। यदि इस पर अधिक दाब का प्रभाव हो तो यह फैलने वाली क्रिया कम हो जाती है। इसी प्रकार संरचना के आस-पास बड़े-बड़े बृक्ष, छोटी-छोटी झाड़ियाँ और लम्बी-लम्बी घासें भूमि के जल को ऊपर खींचकर नमी में असन्तुलन पैदा कर देती हैं। यह विशेषरूप से हानिकारक है। इस प्रकार अनेक क्रियाओं से दरारें बन जाती हैं। इन दरारों में से रिसता हुआ जल मिट्टी के किसी विशेष तल पर शीघ्र पहुँच जाता है, जिससे उस तल की मिट्टी में फूलने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। इस प्रकार यह फूलने और सिकुड़ने वाली प्रक्रियायें चलती रहती हैं।

फैलने-सिकुड़ने वाली मृदाओं में लगभग सभी प्रकार की क्षति नींव के तल को त्रुटिहीन बनाने के कारण होता है। मिट्टी का आयतन परिवर्तन ऊपर की ओर अधिक नहीं होता है, बल्कि वह भूतल की समानान्तर दिशाओं में होता है। इसीलिए चिटके हुए दरारों में आयतन बृद्धि के उपरान्त उसी में खप जाता है। कुल दाब का मात्र एक तिहाई भाग ही ऊपर की ओर फूलता है। यह अधिक हानिकारक होता है। नमी परिवर्तन से मिट्टी चिटक जाती हैं तथा उसमें बडी-बडी दरारें पड जाती हैं। किन्तु यह नमी परिवर्तन की एक सीमा तक ही होती है। यह मिट्टी के सूखने की अन्तिम सीमा कहलाती है।

समांगी मिट्टियों में नमी परिवर्तन की स्थिति जानने के लिए किए गए परीक्षणों से यह प्रकट होता है कि जब भूमि ढँक देने से वाष्पन क्रिया रुक जाती है, तो भूमि की नमी में कोई परिवर्तन नहीं होता है, किन्तु ज्यों-ज्यों गहराई की ओर बढ़ते हैं, मिट्टी की नमी में कमी होती पाई गई। ऋतु-परिवर्तन मिट्टी के प्रकार तथा भू-जल

के कारण अस्थिर ही बनी रहती है। किसी भी संरचना की नींव यदि इस तल से नीचे बनाई जाए तो वह वास्तव में त्रुटिहीन नींव सिद्ध होगी।

नींव निर्माण की ऐसी स्थितियों के लिए हाल में विकसित अधोग्रंथिल पाइलें (Under-reamed piles) आधुनिक नींवों के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। भारत में इन पाइलों के विकास का कार्य लगभग 1952-53 में सर्वप्रथम केन्द्रीय भवन अनुसन्धान संस्थान में आरम्भ हुआ था। ये पाइलें मौके पर ही समान व्यास के गड्ढे में निश्चित गहराई पर एक विशेष यन्त्र अधोछिद्र बर्धक (Under reaming tool) से छेद चौडा करके उसमें प्रबलित कंक्रीट भरकर तैयार की जाती हैं। पिछले चार दशकों से इन पाइलों का प्रयोग काली या फूलने वाली मिट्टियों में सन्तोषजनक तथा दोष रहित रहा है।

फैलने और सिकुडने वाली मिटिटयों को क्षति से बचाने या क्षति को कम करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करते हैं—

(i) **ऊपरी स्तर को हटाना**

इस विधि का प्रयोग कम गहराई वाली मिट्टियों में करते हैं, जिनकी मोटाई लगभग 50 सेमी० तक होती है। इन मिट्टियों को निकाल कर इसके स्थान पर न फैलने वाली मिट्टियों को भर देते हैं, जिससे फैलने और सिकुडने वाली प्रक्रिया पर प्रतिकूल असर पडता है।

(ii) **अधिक भार का प्रयोग**

फूलने वाली क्रिया को अधिक भार का प्रयोग करके रोका जा सकता है। इसमें फूलने वाली क्रिया के उपरान्त पैदा हुए दाब से अधिक भार का प्रयोग करके क्षति में कमी की जा सकती है। इसका प्रयोग भारी भवनों के निर्माण या अन्य इसी प्रकार की संरचनाओं में किया जा सकता है।

(iii) **अधिक जल के प्रयोग को रोकना**

सूखे स्थानों में अधिक जल के प्रयोग से मिट्टी अधिक फूल जाती है अतः इस क्रिया को रोकने के लिए जल का प्रयोग अधिक मात्रा में न करके क्षति आंशिक या पूर्णरूप से बचाई जा सकती है।

(iv) **गीले होने से बचाना**

नमी से बचाने के लिए इन मिट्टियों में अधिक मात्रा में बालू, कंकड़, पत्थर, चूना आदि का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार केशिका जल दाब से फैलने वाली मिट्टियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और क्षति भी निश्चित रूप से कम हो जाती है।

(v) **अन्य पदार्थों का मिलाना**

मृदा और जल के साथ-साथ कुछ विशेष रसायनों का प्रयोग करके मिट्टी की फैलने-सिकुड़ने की क्रिया में कमी ला सकते हैं जैसे चूना [$Ca(OH_2)$] आदि।

(पृष्ठ 27 पर देखें)

पृथ्वी पर भूकम्प का प्रकोप : सूर्य एक कारण

○आशुतोष मिश्र○

"भूकम्प" शब्द ही कुछ-कुछ दिल दहला देने वाला है। अत्यन्त प्राचीन काल में ही मनुष्य ने भूकम्प से होने वाले सर्वनाश को भलीभाँति देख लिया था। पर वह बेबस था—यह एक ऐसी विपदा थी, जिसका न तो उसे कारण समझ में आता था, और न ही उसके आने का समय। भूकम्पों की विनाशलीला तो बीसवीं सदी में स्पष्ट हुई जब ऊँची-ऊँची इमारतें, बड़े से बड़े पुल, बसे-बसाये शहर कुछ सेकेण्डों के तेज झटकों में तहस नहस हो गए। इस प्रकार के विनाश को देखते हुए वैज्ञानिकों और भूगर्भवेत्ताओं ने इस प्राकृतिक आपदा के रहस्य को सुलझाने के प्रयत्न तेज कर दिये और इस दिशा में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। आइए उन कारणों को समझने का प्रयास किया जाए जो बड़े ही कम समय में पृथ्वी के एक विशाल भाग को हिला कर रख देते हैं।

"भूकम्प" का अर्थ हुआ "पृथ्वी में होने वाला कम्पन", यानि एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा पृथ्वी का एक भाग अपने स्थान से कम्पन द्वारा विस्थापित हो जाए। भूकम्प के कारण को जानने के लिए हमें यह ज्ञात होना भी आवश्यक है कि ये कम्पन पृथ्वी के अन्दर लगने वाले बलों से उत्पन्न हो रहे हैं अथवा कोई बाहरी बल पृथ्वी के घूर्णन की गति को प्रभावित कर, उसमें कम्पन उत्पन्न कर देता है। शायद आप इस बात से परिचित होंगे कि पृथ्वी के कुछ भाग भूकम्पों की चपेट में सर्वाधिक आते हैं, जबकि कुछ भाग सर्वथा अप्रभावित रहते हैं। क्या इसके पीछे भी कोई कारण है? संयुक्त राज्य अमेरिका के अड़तालीस राज्यों में कैलिफोर्निया सबसे अधिक भूकम्प प्रभावित (scismica lly active) क्षेत्र माना जाता है। सन् 1906 में आए विनाशकारी भूकम्प ने कैलिफोर्निया के सैन फ्रांसिस्को नगर को तबाह कर डाला था। यह तो निश्चित है कि इस क्षेत्र में यदि भूकम्प पुनः आया तो उसकी विनाशलीला का अन्दाज लगाना मुश्किल होगा क्योंकि कैलिफोर्निया आज अमेरिका के सबसे उन्नत और विकसित राज्यों में से है। 1906 के भूकम्प ने भूगर्भवेत्ताओं को इस ओर ध्यान देने के लिए बाध्य कर दिया कि आखिर पृथ्वी के अन्दर इतनी विशाल मात्रा में बल कैसे उत्पन्न हो जाता है? पिछले कुछ दशकों में भूगर्भ विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी अवधारणाएँ उभर कर सामने आई हैं, जिनके फलस्वरूप यह जान सकना सम्भव हुआ है कि महाद्वीपों ने किस प्रकार अपना वर्तमान रूप धारण किया है और पृथ्वी पर वे किस तरह व्यवस्थित हैं।

वर्तमान अवधारणा के अनुसार सभी महाद्वीप, पृथ्वी के पटल (crust) से बनी प्लेटों (plates) पर ठीक उसी प्रकार तैर रहे हैं जैसे नदी में वृक्षों के बड़े-बड़े तने तैरते है। इस प्रक्रिया में ये महाद्वीप एक दूसरे से रगड़ भी खाते रहते हैं, टकराते रहते हैं, जिसके कारण ज्वालामुखी फट पड़ते हैं, कई स्थानों पर भूस्खलन होने लगता है और पृथ्वी के कई भाग भूकम्पों से तहस-नहस हो जाते हैं। प्लेटों पर महाद्वीपों के तैरने का सिद्धान्त प्लेट विवर्तनिकी (plate tectonics) के नाम से भी जाना जाता है। साथ दिये चित्र 1 में सात मुख्य प्लेटें प्रदर्शित हैं। यदि हम 'महाद्वीपीय विस्थापन' (continental drift) की अवधारणा को स्वीकार करें, तो हमें यह ज्ञात होता है कि सभी

चतुर्थ वर्ष, आई० आई० टी०, कानपुर, उत्तर प्रदेश

प्लेटें अत्यन्त मन्द गति से एक दूसरे से रगड़ती हुई निरन्तर चल रही हैं। कुछ लाख वर्षों में धक्के खाते हुए ये प्लेटें महाद्वीपों को एक निश्चित प्रतिरूप (pattern) में सुनियोजित कर देती हैं। पर यहाँ आकर बात रुक नहीं जाती। यह प्रक्रिया चलती रहती है, और कुछ लाख वर्षों के अन्तराल पर महाद्वीपों की संरचना में परिवर्तन होता रहता है।

आप यदि चित्र 1 को ध्यान से देखें तो आपको पता लगेगा कि अमेरिका में कैलिफोर्निया जिस स्थान पर है, उसकी स्थिथि ही कुछ विचित्र है। कैलिफोर्निया का एक भाग, जो कि सैन ऐन्ड्रीज भ्रंश (San Andreas Fault) की पूर्वी दिशा में है, एक प्लेट पर स्थित है, जब कि शेष अमेरिका एक दूसरी प्लेट पर है। कैलिफोर्निया का यह भाग शेष अमेरिका से रगड़ खाता हुआ, 3.5 से 5 सेन्टीमीटर प्रतिवर्ष की गति से उत्तरी दिशा में जा रहा है। कभी-कभी यह भाग एक स्थान पर कुछ दशकों तक के लिए रुक जाता है, और फिर एक झटके साथ वहाँ से अपने को अलग कर पुन: आगे बढ़ने लगता है। यह तेज झटका ही विनाशकारी भूकम्प का रूप ले लेता है। सैन ऐन्ड्रीज भ्रंश दो भागों में विभक्त है। उत्तरी क्षेत्र की चट्टानों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भ्रंश के दोनों ओर की चट्टानें लगभग 1 सेमी० प्रतिवर्ष की गति से एक दूसरे के सापेक्ष्य खिसक रही हैं। दक्षिणी क्षेत्र में खिसकने की गति लगभग 6 सेमी० प्रतिवर्ष है। गतियों का यह अन्तर प्रत्यास्थ प्रतिक्षिप्ति (elastic rebound) नामक प्रक्रिया के फलस्वरूप होता है, जिसके कारण भूकम्प और भी अधिक विनाशकारी सिद्ध होते हैं। चित्र 2 में इस प्रक्रिया को समझाया गया है। मान लीजिए दो प्लेटें एक दूसरे से रगड़ खाती हुई विपरीत दिशाओं में आगे बढ़ रही हैं। (a) यदि इन दो प्लेटों की सन्धि से गुजरने वाली रेखा को हम देखें तो कुछ समय बाद वह चित्र 2(b) की तरह दिखनी चाहिए। परतु ऐसा नहीं होता है। वास्तविक स्थिति 2(c) की की भाँति होती है क्योंकि ये प्लेटें एक दूसरे से चिपक जाती हैं। धीरे-धीरे चट्टानों से इतनी अधिक विकृति उत्पन्न हो जाती है कि वे इसे बर्दाश्त नहीं कर पातीं और टूट जाती हैं—यह स्थिति 2(d) में स्पष्ट है—जिससे भूकम्प आ जाते हैं।

यह तो आपने जान लिया कि भूकम्पों के आने के लिए प्लेटों में विकृति (Strain) होनी आवश्यक हैं। कई वर्षों तक प्लेटें आपस में रगड़ खाने के फलस्वरूप इस स्थिति में आ जातीं हैं कि एक छोटा सा झटका भी एक भयंकर भूकम्प का कारण बन सकता है। प्रश्न इस बात का है कि प्लेटों को मुक्त करने के लिए जो बल चाहिए होता है, वह कहाँ से आता है? मनुष्य के बस में नहीं कि वह इतना बल उत्पन्न कर सके (हालाँकि पृथ्वी के बहुत अन्दर परमाण्वीय अस्त्रों के परीक्षण से इस प्रकार के बल यदा कदा उत्पन्न भी हो जाते हैं, जिससे भूकम्प आने लगते हैं)। इस बल को ढूँढ़ निकालने के लिए हमें पृथ्वी के घूर्णन होने वाले प्रभावों का अध्ययन करना होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी की घूर्णन गति में अचानक परिवर्तन होने से रुकी हुई प्लेटों को झटका लगता हे, जिससे भूकम्प आना प्रारम्भ होता है।

आपने नाचते हुए लट्टू (top) को तो देखा ही होगा। नाचते लट्टू के घूर्णन अक्ष (axis of rotation) में एक प्रकार कीं डगमगाहट (wobbling) होती है। ठीक यही स्थिति पृथ्वी की भी होती है, जब वह सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। चूंकि पृथ्वी विषुवत् रेखा (equator) पर फुली हुई और ध्रूवों (poles) पर पिचकी है, इसलिये सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी की गति को समय-समय पर प्रभावित करते रहते हैं। पृथ्वी को विषुवत् रेखा (equator) पर फूले होने से सूर्य और चन्द्रमा के गुरुत्व बलों को एक प्रकार का "हैण्डल" प्राप्त हो जाता है, जिसके द्वारा वे पृथ्वी को
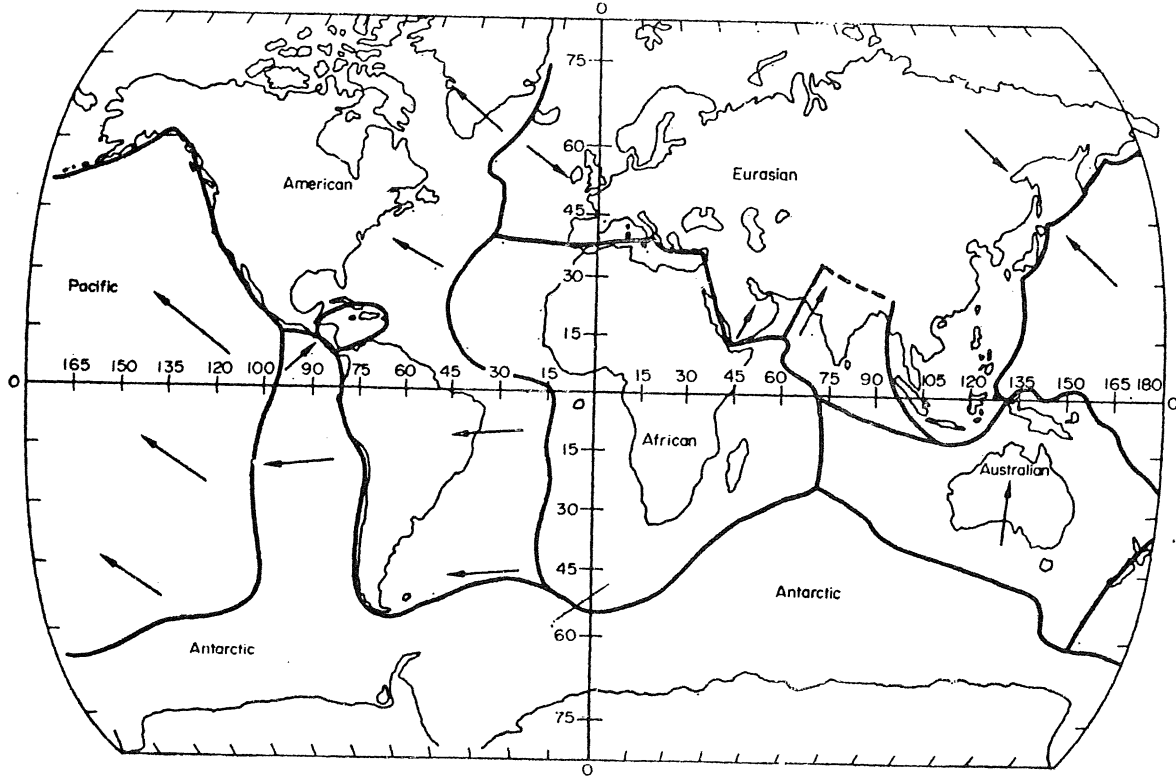
चित्र 1. महाद्वीपों की प्लेट विवर्तनिकी

सरलता से प्रभावित कर सकते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के भिन्न गुरुत्वाकर्षण के कारणवश पृथ्वी के ध्रुव कभी एक निश्चित दिशा में नहीं होते। पृथ्वीवासियों के लिए आकाश में तारों की समस्त स्थितियाँ 25800 वर्षों के आवर्तकाल (period) के साथ बदलती रहती हैं। आज हम "पौलैरिस" तारे को ध्रुव तारे के स्थान पर देखते हैं, परन्तु उस स्थान पर सन् 14000 A. D. में एक अन्य तारा "वेगा" होगा। आप सोच रहे होंगे कि इसका भूकम्पों से क्या लेना देना ? वास्तव में भूकम्पों और पृथ्वी की घूर्णन गति में परिवर्तन के बीच सीधा सम्बन्ध है। भूगर्भवेत्ता यह कहते हैं कि पृथ्वी के घूर्णन अक्ष में होने वाली डगमगाहट भूकम्पों को "ट्रिगर" करती है, जबकि खगोलशास्त्री ऐसा विश्वास करते हैं कि भूकम्प के फलस्वरूप बहुत अधिक मात्रा में द्रव्य स्थानान्तरण पृथ्वी के कुछ हिस्सों की ओर हो जाता है, जिससे पृथ्वी का घूर्णन अक्ष डगमगाने लगता है। दोनों ही विचारधारायें सम्भवतः सही हैं। डगमगाहट और भूकम्प एक दूसरे को बड़े ही पेचीदे ढँग से प्रभावित करते हैं, और उनके बीच सम्बन्धों पर गहन शोध इन दिनों
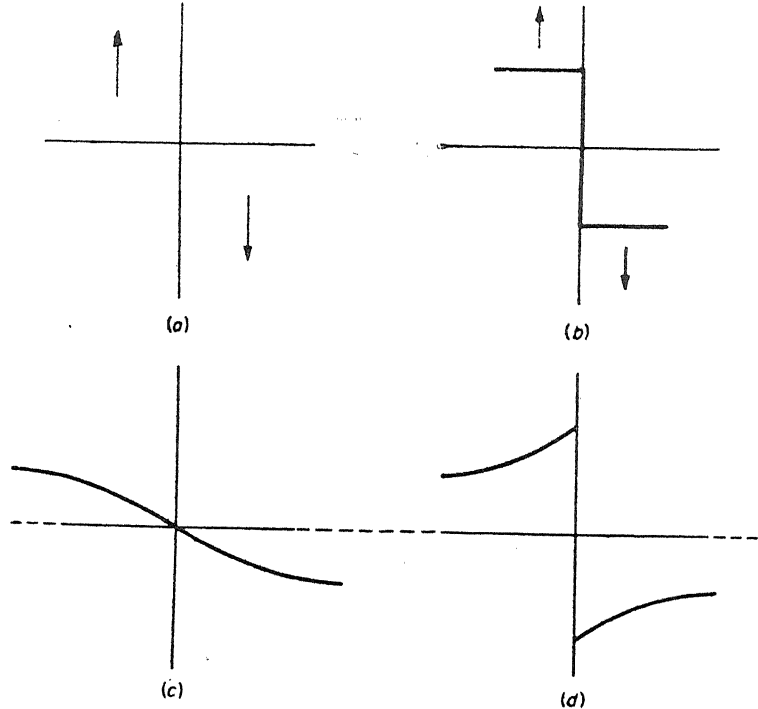
चित्र 2. प्रत्यास्थ प्रतिक्षिप्ति की व्याख्या

चल रहा है। पृथ्वी के घूर्णन में परिवर्तन के अन्य कई कारण होते हैं। इनमें सबसे प्रमुख कारण है, मौसम बदलने के साथ पृथ्वी का गर्म और ठण्डा होना, जिससे विशाल मात्रा में एक स्थान की हवा दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित हो जाती है। इससे समुद्रों का जल स्तर घटता-बढ़ता रहता है। स्तर परिवर्तन के फलस्वरूप जब यह जल संकुचित स्थानों जैसे अंत: समुद्रों (narrow inland seas) तक पहुँचता है, तब उसमें निहित ऊर्जा का ह्रास होता है जिससे पृथ्वी की ऊर्जा और संवेग (momentum) में परिवर्तन होते हैं और उसकी घूर्णन गति बदल जाती है।

यह तथ्य तो आप जानते होंगे कि समुद्र में ज्वार-भाटा (tides) आते रहते हैं। पर शायद आपको यह न ज्ञात हो कि भूमि में भी इस प्रकार के ज्वार उत्पन्न होते हैं, जिससे भूमि का स्तर, 12 घन्टों में 10 सेमी० तक उठता गिरता रहता है। इनका सीधा प्रभाव पृथ्वी के घूर्णन पर पड़ता है क्योंकि इस प्रक्रिया से होने वाला ऊर्जा बल पृथ्वी के संवेग में परिवर्तन उत्पन्न करता है। भूकम्प के कारण को जानने के लिए आवश्यक है कि ज्वार-भाटे की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक समझा जाए।
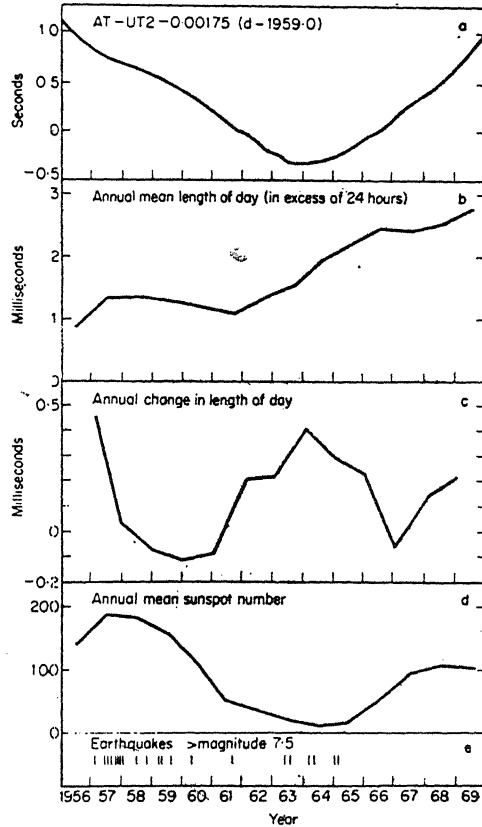
चित्र 3. दिन की लम्बाई, सौर कलंकों की संख्या और भूकम्पों की आवृत्ति के बीच सम्बन्ध

समुद्र में ज्वार के समय लहरें कई-कई मीटर ऊपर उठती हैं, परन्तु पृथ्वी की सतह का ज्वार इतने विशाल स्तर पर नहीं होता कि हम उसका आनन्द ले सकें। पृथ्वी का गुरुत्व बल उसकी सतह पर प्रत्येक वस्तु को पृथ्वी के केन्द्र की ओर आकर्षित करता है, परन्तु पृथ्वी के केन्द्र का ठोस भाग एक द्रव स्थैतिक बल (hydrostatic force) बाहर की ओर लगाता है जिसकी मात्रा लगभग गुरुत्व बल के बराबर होती है। इन दो बलों के अन्तर के बराबर लगने वाला अवशिष्ट बल (residual force) पृथ्वी की सतह पर क्षैतिज विस्थापन (horizontal displacements) उत्पन्न करता है। इस ज्वारीय बल के कारण ही नदियाँ बहती हैं। यह ज्वारीय बल ही पृथ्वी में भिन्न-भिन्न प्रकार

के प्रतिबल (stresses) भी उत्पन्न करता है जो महासागरीय कटक (ocean ridge) तथा प्लेट सन्धियों (plate boundaries) पर संकेन्द्रित होते हैं। जब ज्वारीय तरंगें इन स्थानों (जैसे कटकों और प्लेट सन्धियों) से गुजरती हैं, तो उनमें निहित ऊर्जा, घर्षण से कारण ऊष्मा में परिवर्तित हो जाती है। ठीक ऐसी ही प्रक्रिया सैन एन्ड्रीज क्षेत्र को सबसे अधिक भूकम्पी क्षेत्र बना देती है। पृथ्वी के ज्वार और अन्य विकृतियों की यांत्रिक ऊर्जा का ह्रास होने का सबसे आसान साधन भूकम्प होता है।

सौर प्रज्वाल (Solar Flares) तथा कॉस्मिक किरणों की पृथ्वी के घूर्णन पर प्रभाव

सन् 1956 में एक दिन की अवधि 24 घन्टे से एक मिली सेकेण्ड अधिक थी। 15 वर्षों बाद, सन् 1971 में यह अवधि बढ़कर 24 घन्टे तीन मिली सेकेन्ड हो गई। इस बीच पृथ्वी के घूर्णन में अनेक बार त्वरण और मंदन हुआ (जिसका कारण आप पहले ही जान चुके हैं)। घूर्णन में अचानक होने वाले परिवर्तन भूकम्पों को ट्रिगर कर देते हैं। सन् 1950 में कुछ खगोलशास्त्रियों ने सुझाव दिया कि लगभग प्रत्येक दस वर्षों में पृथ्वी के घूर्णन में एकाएक परिवर्तन होते हैं। क्या इस तथ्य को सूर्य कलंक चक्र (solar sunspot cycle) के 11 वर्षों के आवर्तकाल से जोड़ा जा सकता है ? भूकम्पों और सूर्यकलंकों के बीच में कोई सम्भव सम्बन्ध ढूंढ निकालने के लिए सन् 1957 से 1968 के बीच (यानि 11 वर्ष=1 सूर्य कलंक चक्र) दिन की अवधि में परिवर्तन, सौर धब्बों की संख्या और भूकम्पों की आवृत्ति का अध्ययन किया गया। अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो गई कि सौर धब्बों की संख्या और दिन की अवधि में होने वाले परिवर्तनों में सीधा सम्बन्ध है। इसका अर्थ यह हुआ कि सौर सक्रियता का पृथ्वी के घूर्णन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ सौर सक्रियता और भूकम्पों की संख्या में भी सम्बन्ध उभरकर सामने आया। (देखिए चित्र 3)
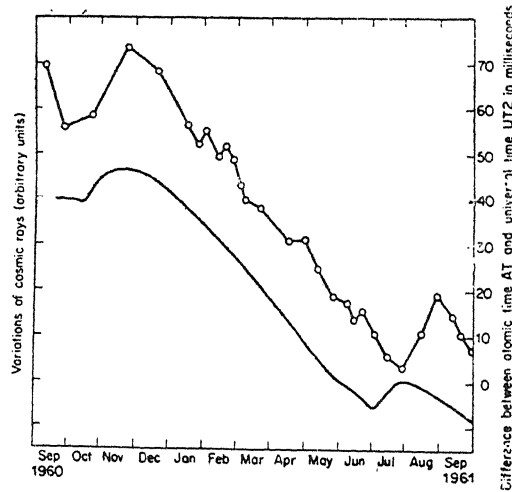
चित्र 4. 1960-61 के बीच कॉस्मिक किरणों की मात्रा (निचला वक्र) और दिन की लम्बाई (ऊपरी वक्र) के बीच सम्बन्ध

सन् 1959 में सूर्य पर एकाएक प्रचंड आँधियाँ चलने लगीं और 15 जुलाई 1959 को एक विशाल सौर प्रज्वाल (solar flare) उत्पन्न हुआ। उस समय वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के घूर्णन में परिवर्तन होने की आशंका व्यक्त की, परन्तु उस समय अन्तरिक्ष में ऐसे यान (space vehicles) नहीं थे (आजकल कॉस्मिक किरणों तथा अन्य सौर प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए अनेक अन्तरिक्ष यान छोड़े जा चुके हैं) जो कि इस सौर प्रज्वाल का गहराई से विश्लेषण कर सकें। सन् 1972 में इससे भी प्रचंड प्रज्वाल उत्पन्न हुआ और उसका अध्ययन और प्रभाव जान सकने में अन्तरिक्ष और भूगर्भ वैज्ञानिक समर्थ हो सके।

सौर धब्बे सूर्य के उन क्षेत्रों पर स्थित होते हैं जहाँ सूर्य का चुम्बकीय क्षेत्र सामान्य से कहीं अधिक मात्रा में केन्द्रित रहता है। इन क्षेत्रों में चुम्बकत्व कई हजार गाउस हो सकता है (तुलना के तौर पर, पृथ्वी के ध्रुवों पर इसकी मात्रा 0.6 गाउस और विषुवत् रेखा पर 0.3 गाउस होती है; 1 गाउस $=10^{-4}$ टेसला) सौर प्रज्वाल सूर्य कलंक वाले क्षेत्रों में ही उत्पन्न होते हैं और इनसे विशाल मात्रा में कॉस्मिक किरणें, रेडियो तरंगें और एक्स किरणें बाहर निकलती हैं। 1972 के सौर प्रज्वाल की किसी को आशा नहीं थी और इसने वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित कर दिया। अगस्त 1972 को इस घटना के समय पायनियर—10 और OSO—7 जैसे अन्तरिक्षयान, अन्तरिक्ष की गहराइयों के अध्ययन में लगे थे। इन दोनों यानों ने ही घटना को रिकार्ड किया तथा उनसे प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सके।

अन्तरिक्ष में ग्रहों के बीच का स्थान (inter planetary space) प्लाजमा (plasma) से निर्मित होता है। प्लाज्मा गैस का वह रूप होता है, जिसके परमाणुओं (atoms) से इलेक्ट्रॉन निकाले जा चुके होते हैं, जिससे आवेशित आयन (ions) शेष बचते हैं। ये आयन सूर्य से बाहर की ओर लगभग 400 किमी॰ प्रति सेकेन्ड की गति से बाहर निकलते हैं। आवेशित होने के कारण आयनों की यह सौर आँधी (solar wind) विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों को प्रवाहित होने देती है। कॉस्मिक किरणें (जो कि हमारे सौरमन्डल के बाहर से आती हैं) भी आवेशित होती हैं और जब ये सौर आँधी से टकराती हैं, इनका एक विशाल भाग सौरमन्डल में प्रवेश पा सकने में असमर्थ रहता है। सौर प्रज्वाल के समय सौर आँधियों की गति 1100 किमी॰ प्रति सेकेन्ड तक पहुँच जाती है फलस्वरूप कॉस्मिक किरणों का प्रवेश और भी कठिन हो जाता है। इन सभी प्रक्रियाओं का पृथ्वी के घूर्णन (और फलस्वरूप दिन की लम्बाई) पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 1959 में किये गये अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि पृथ्वी पर पड़ने वाली कॉस्मिक किरणों की मात्रा और दिन की लम्बाई में सीधा सम्बन्ध होता है। चित्र 4 के अनुसार, जैसे-जैसे कॉस्मिक किरणों की मात्रा घटती है (यानि सूर्य की सक्रियता बढ़ती है), दिन की अवधि में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार सूर्य की सक्रियता हमारी पृथ्वी के घूर्णन को अचानक परिवर्तित कर सकती है, जिसके कारण भूकम्पों के आने की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसा देखा गया कि सन् 1959 के सौर प्रज्वाल के बाद भूकम्पों की संख्या सामान्य से कुछ अधिक हो गई। वैसे अभी यह तथ्य पूर्णरूप से पुष्ट नहीं हो सका है कि सूर्य ही भूकम्पों के लिए जिम्मेदार है, परन्तु इसके द्वारा कम से कम हम बड़े भूकम्पों के आने का पूर्वानुमान कहीं बेहतर ढँग से लगा सकते हैं। इतना ही नहीं विस्तृत गणनाएँ इस बात का संकेत देती हैं कि सूर्य ही नहीं, अन्य ग्रह भी पृथ्वी पर आने वाले भूकम्पों के कारण सिद्ध हो सकते हैं, या फिर भूकम्पों को और अधिक विनाशकारी बना सकते हैं। इस दिशा में चल रहा निरन्तर शोध निश्चित ही बहुमूल्य जानकारी देगा जिससे कि भूकम्पों का सही पूर्वानुमान लगाकर मानवता को भूकम्पों की विनाशलीला से बचाया जा सके। ● ●

परिषद् का पृष्ठ

(1) वेद गोष्ठी : संक्षिप्त विवरण

खाड़ी युद्ध से आन्दोलित पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेदों में युद्ध और शान्ति सम्बन्धी चर्चा के सार्वजनीन होने की इच्छा से 10 एवं 11 मई 1991 को विज्ञान परिषद् प्रयाग में एक वेद गोष्ठी आयोजित की। इसका आयोजन अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली के सौजन्य से सम्पन्न हुआ। वेदों के मूर्धन्य विद्वान स्वामी जी के निर्देशन एवं डॉ० प्रीति अदावल के संयोजकत्व में निर्धारित तिथियों को यह वेद गोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। गोष्ठी के उद्घाटन समारोह में प्रो० त्रिविक्रम पति (निवर्तमान कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय) मुख्य अतिथि तथा आर्य समाज के मूर्धन्य विज्ञान पं० मूलचन्द्र अवस्थी ने अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। अत्यधिक अस्वस्थता के बावजूद पूज्यपाद स्वामी जी भी कार्यक्रम में उपस्थित रहे। इससे सत्र में उत्साह का वातावरण रहा। श्री के एल० भाटिया ने वेदपीठ का परिचय दिया एवं अतिथियों का स्वागत किया। डॉ० रुद्र प्रकाश श्रीवास्तव (वरिष्ठ प्रवक्ता, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज) ने अभ्यागतों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। आर्य कन्या डिग्री कॉलेज की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत वैदिक राष्ट्रीय वन्दना से प्रारम्भ हुआ सत्र शिव संकल्प सूक्तगान के साथ समाप्त हुआ।

श्रीमती माधुरी श्रीवास्तव (आई० ए० एस०) प्रथम सत्र की अध्यक्ष मनोनीत की गयीं। सर्वप्रथम डॉ० अशोक शर्मा (मोती लाल नेहरू इंजीनियरिंग कॉलेज) ने "वैदिक ज्ञान प्रक्रिया के अन्तर्गत आत्मचेतना का विज्ञान" विषय पर अद्भुत व्याख्यान प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् इलाहाबाद नगर की वेद विदुषियों कु० किरण द्विवेदी एवं डॉ० तमिस्रा चटर्जी ने शोध-पत्र प्रस्तुत किए। सत्र का अन्त डॉ० उर्मिला श्रीवास्तव (प्रवक्ता, आर्यकन्या महिला महाविद्यालय) के विद्वतापूर्ण व्याख्यान से हुआ। श्री ज्वलन्त कुमार शास्त्री जी ने सत्र का संचालन किया।

भोजनोपरान्त अपरान्ह सत्र डॉ० ज्योतिर्मित्र (प्रो० एवं अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सुश्री माधुरी तर्कप्सुका (अध्यापिका, पाणिनीय कन्या महाविद्यालय, वाराणसी) ने शोध निबन्ध प्रस्तुत कर सत्र का आरम्भ किया। तदुपरान्त डॉ० प्रशस्य मित्र (प्रवक्ता, फिरोज गाँधी डिग्री कॉलेज, रायबरेली) ने व्याख्यान के साथ ही श्रोताओं के आग्रह पर संस्कृत भाषा में कुछ हास्य-व्यंग्य मुक्तक रचनाएं सुनाकर वातावरण को प्रफुल्लित कर दिया। स्वामी दूधपुरी वेदालंकर जी (गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार) के सारगर्भित व्याख्यान के साथ ही सत्र समाप्त हुआ।

द्वितीय दिवस के प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रो० तेजोमित्र आचार्य (देहरादून) ने की। इस सत्र के प्रथम व्याख्याता श्री दीनानाथ जी (अमेठी) के सुन्दर व्याख्यान के साथ डॉ० वेदप्रकाश (प्रो० एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार) ने गोष्ठी के विषय पर प्रकाश डाला। डॉ० अमलधारी सिंह (प्राचार्य, डिग्री कॉलेज बैसवारा, लालगंज, रायबरेली) एवं श्री रमेशचन्द्र द्विवेदी (गुरुकुल सिराथू) ने इस अशान्तिपूर्ण युग में वेदों की महत्ता प्रतिपादित की। गोष्ठी के सभी सत्रों का संचालन अमेठी से आये डॉ० ज्वलन्त कुमार जी ने विवेचनापूर्ण शैली में की।

इस द्विदिवसीय व्याख्यानमाला में अनेक वैदिक विद्वानों ने देवभाषा संस्कृत का आश्रय लेकर अपने विचार प्रकट किये। सभी ने वैदिक उद्धरण देकर अपने मत की पुष्टि की। अतः वेद मन्त्रों की अनुगूँज से वातावरण में एक प्रकार की पावनता व्याप्त रही। लगभग सभी वेदज्ञों की मान्यता थी कि युद्ध साधन है और शान्ति साध्य। शान्ति की स्थापना के लिए युद्ध आवश्यक एवं अपरिहार्य है। वैदिक सिद्धान्तों को आदर्श मानकर लड़ा गया युद्ध धर्म युद्ध है। यदि इसकी योजना शत्रु के विनाश एवं शान्ति के प्रसार-प्रचार—इन दो तथ्यों पर आधृत हो।

इस प्रकार देश के विभिन्न नगरों से पधारे विद्वज्जनों के विचारों के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् गोष्ठी का औपचारिक समापन श्रीमती शान्ति देवबाला (लखनऊ) के ओजस्वी भाषण से हुआ। किन्तु श्रोताओं के मन में यह विचार दृढ़ हो गया कि आज की जटिलताओं का समाधान वेदों में ही उपलब्ध है। अतः ऐसी विद्वतापूर्ण सामयिक गोष्ठियों के आयोजन से वैदिक धर्म की स्थापना का पुर्नप्रयास होना चाहिए। इसी में समाज का सर्वतोन्मुखी विकास निहित है। अन्ततः स्वामी जी के आशीर्वाद एवं मंगल वचनों से गोष्ठी की इतिश्री हुई। ● ●

—प्रस्तुति : डॉ० प्रीति अदावल
संयोजक, अन्तर्राष्ट्रीय वेद गोष्ठी
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

(2) प्राकृतिक आपदायें और पर्यावरण

5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर विज्ञान परिषद् में 'प्राकृतिक आपदायें और पर्यावरण' विषय पर विचार गोष्ठी सम्पन्न हुई। स्टाकहोम में 5 जून 1972 को संयुक्त राष्ट्र की आमसभा ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environmental Programme-UNEP) की स्थापना की तभी यह घोषित किया कि 5 जून को प्रत्येक वर्ष 'विश्व पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाया जायेगा। तब से प्रत्येक वर्ष एक विशेष विषय चुनकर सारे विश्व में पर्यावरण दिवस मनाया जाता है।

पिछले दिनों प्राकृतिक आपदाओं की अनेक दुर्घटनायें घटित हुई इस कारण गोष्ठी का विषय चर्चा के लिए उपयुक्त जान पड़ा।

प्राकृतिक आपदाओं में भूकम्प, चक्रवात, सूखा, बाढ़, ज्वालामुखी का फटना, हिमपात, उल्का पिण्डों का धरती पर गिरना प्रमुख हैं। एक सूचना के अनुसार 1960 से 1990 यानी पिछले तीस वर्षों में प्राकृतिक आपदाओं की संख्या दुगनी हो गई है। इस विचार गोष्ठी में भाग लेने वालों ने एकमत से यह स्वीकार किया कि अब प्राकृतिक आपदायें मनुष्य को उसके दुष्कर्मों के लिए ईश्वर द्वारा दिये गये दण्ड नहीं हैं। अब लोग इनके वैज्ञानिक कारण और इनसे बचने के उपाय जानना चाहते हैं। यह भी विचार प्रगट किया गया कि इन आपदाओं के विषय में लोगों तक अधिक से अधिक जानकारी पहुँचाने की आवश्यकता है।

इस बिचार गोष्ठी में यह भी विचार रखा गया कि सभी वक्ता जिन्होंने अलग-अलग विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, उन विचारों को आलेखों के रूप में 'विज्ञान' पत्रिका में प्रकाशित किया जाये।

एक विचार यह भी सामने उभर कर आया कि धरती पर मनुष्य की ऐसी गतिविधियाँ जिनसे प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ रहा है, से भी प्राकृतिक आपदाओं की संख्या बढ़ी है। जैसे जंगलों के कटने से हमें बाढ़ और सूखे की विभीषिकाओं का सामना करना पड़ा है।

लकड़ी, कोयले और पेट्रोल के दहन से कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी गैसों की मात्रा वातावरण में आवश्यकता से कहीं अधिक हो गई है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन, जिसमें लगभग 40 गैसें होती हैं के रेफ्रीजरेटर, अन्य शीतलक और फोम के निर्माण में प्रयुक्त होने से ओजोन की स्तर पतली हुई है। यह ओजोन स्तर हमारी सुरक्षा सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों से करती है। कुल मिलाकर धरती के ताप में वृद्धि हुई है। ताप में यह वृद्धि ध्रुवो की बर्फ को गलाकर समुद्रतटीय क्षेत्रों को जलमग्न कर देगी। इससे कितने जन-धन की हानि होगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कार्बनडाइऑक्साइड, जलवाष्प, धरती के वातावरण में निचले स्तर पर पाई जाने वाली ओजोन और अन्य गैसें, हरित गृह प्रभाव या ग्रीन हाउस इफेक्ट पैदा करती हैं। इससे निश्चय ही जलवायु में परिवर्तन होगा। इस प्रकार यदि मनुष्य अपनी गतिविधियों पर नियन्त्रण कर सके तो वे प्राकृतिक आपदायें, जो मानव की अपनी गति-

विधियों से सीधे जुड़ी हैं, उन पर कुछ सीमा तक नियन्त्रण रखा जा सकता है। दूसरी ओर ऐसी प्राकृतिक आपदायें जिन पर मनुष्य का नियन्त्रण नहीं है, उनकी पूर्व सूचना मिलने पर उनसे होने वाली जन-धन की हानि कम की जा सकती हैं। यह धरती किसी एक की नहीं, सबकी है और धरती की समस्याओं के समाधान भी हमें मिल-जुलकर ही ढूंढ़ने होंगे।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ० शिवगोपाल मिश्र और संचालन प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया। इनके अतिरिक्त डॉ० मुरारी मोहन वर्मा, सर्वश्री राजेश कुमार केसरी, विनय कुमार, विनम्र प्रकाश, पुष्पेश कुमार पुजारी, अजय कुमार बर्नवाल ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। ● ●

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वक्तव्य

यह अंक

प्रिय सुहृद !

यह अंक देख कर शायद आप चौंक उठें। बिना किसी पूर्व योजना के यह अंक आनन-फानन तैयार हो गया। वास्तविकता तो यह है कि मुझे भी नहीं मालूम था कि जुलाई अंक में आपको आपदाओं से सम्बन्धित जानकारी दे सकूंगा।

हुआ यों कि 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर "प्राकृतिक आपदायें और पर्यावरण" विषय पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया, क्योंकि पिछले दिनों चक्रवात और ज्वालामुखी विस्फोट जैसी प्राकृतिक आपदायें अखबार की सुर्खियों में थीं।

विचार गोष्ठी प्रारम्भ होने के थोड़ी देर पहले स्थानीय समाचारपत्र 'जनमोर्चा' के एक संवाददाता विज्ञान परिषद् में आ गये और बताया कि विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर समाचारपत्रों में मात्र विज्ञान परिषद् में ही कार्यक्रम की सूचना प्रकाशित थी। उन्होंने इस गोष्ठी की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए 2 घन्टे बाद पुनः आने का आश्वासन दिया।

विश्वविद्यालय और सम्बद्ध कॉलेजों के बन्द होने के कारण हमें अधिक लोगों के आने की आशा भी नहीं थी। आशा के अनुरूप कम लोग ही आ सके। लगभग दो घन्टे तक यह गोष्ठी चली और वक्ताओं ने प्राकृतिक एवं मानवकृत आपदाओं पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये और जोश में आकर यह प्रस्ताव भी पारित कर दिया कि 'विज्ञान' में उनके विचारों को प्रकाशित भी किया जाये ताकि जनसामान्य में आपदाओं के प्रति चेतना जाग्रत की जा सके।

बस यहीं मेरे हाथ इस अंक का सूत्र लग गया। फिर तो मैंने अपने युवा मित्रों को धर पकड़ा। तय यह हुआ कि प्रत्येक वक्ता किसी एक आपदा पर एक लेख देगा। और लगभग एक हफ्ते तक चलने वाली एक कार्य-शाला का आयोजन ही हो गया। सभी लोग परिषद् में भोजनोपरान्त आते और शाम तक लेख तैयार करते। लेखकों के लिए प्रामाणिक सामग्री जुटाने का काम डॉ० शिवगोपाल मिश्र और मैंने किया। लेख तैयार हो जाने के बाद सभी ने एक दूसरे के लेखों को ध्यान से पढ़ा और इस प्रकार इस अंक की सामग्री तैयार हो गई।

वैसे सम्भवतः हम यह सब कुछ न कर पाते यदि समाचारपत्रों और आकाशवाणी ने हमारा उत्साहवर्धन न किया होता। 5 जून को ही 'जनमोर्चा' ने सायं इस गोष्ठी की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। दूसरे दिन 'दैनिक जागरण' ने और अन्य समाचारपत्रों ने भी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी।

जब इस गोष्ठी का लगभग समापन हो रहा था उस समय 'आकाशवाणी' से अपने रेकार्डर उपकरणों के साथ प्रतिनिधि आ गये और मेरी आवाज में इस विचार गोष्ठी की एक संक्षिप्त रिपोर्ट भी रेकार्ड करके ले गये, जिसे 'आकाशवाणी' (इलाहाबाद) ने 9 जून को अपने 'परिक्रमा' कार्यक्रम के अन्तर्गत् प्रसारित किया। गोष्ठी की रिपोर्ट को 'परिषद् का पृष्ठ' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया है।

'आपदा' से किसी ऐसी दुर्घटना का तात्पर्य है जो अचानक घटित होती है और जिससे जन-धन की अपार हानि होती है। आपदायें दो प्रकार की होती हैं—
(1) मानवकृत एवं (2) प्राकृतिक।

मानवकृत आपदाओं में युद्ध, लड़ाई,आगजनी, दुर्घटना, नाभिकीय विस्फोट अथवा पारिस्थितिकीय गड़बड़ी यथा निर्वनीकरण से सम्बन्धित मृदा अपरदन, भू-स्खलन आदि आते हैं।

प्राकृतिक आपदाओं में आँधी, चक्रवात, भूकम्प, तूफान, बवन्डर (टॉरनाडो), प्रचण्ड तूफान (टाइफून), बाढ़, सूखा, ज्वालामुखी विस्फोट, हिमस्खलन, बाँध टूटना आदि माने जाते हैं।

किन्तु आपदायें चाहे मानवकृत हों या प्राकृतिक, इनसे होने वाला विनाश एक जैसा ही होता है। वैसे अब आमलोग भी यह समझने लगे हैं कि प्राकृतिक आपदायें ईश्वर द्वारा मानव के दुष्कर्मों के लिए दिये गये दण्ड नहीं हैं। अब लोग यह भी समझने लगे हैं कि बाढ़ और सूखे जैसी आपदायें मानव की अपनी गतिविधियों से जुड़ी हैं। वनों के लगातार कटने से जहाँ एक ओर बाढ़ और सूखे की आवृत्ति बढ़ी है वहीं रेगिस्तान का भी विस्तार हुआ है।

13 एशियाई देशों में 1964-86 के बीच किये गये सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि जहाँ नेपाल और थाइलैण्ड में आपदाओं की संख्या सबसे कम रही है वहीं भारत, बांग्लादेश, इण्डोनेशिया और फिलीपीन्स में आपदाओं की संख्या सर्वाधिक रही है। भारत इस मामले में शीर्ष पर रहा। सभी प्रकार की आपदाओं के मुख्य रूप से चार तरह के प्रभाव देखने में आते हैं—

(I) मनुष्यों और पशु-पक्षियों की मृत्यु,

(II) घर-सम्पत्ति की हानि,

(III) आर्थिक गतिविधियों में अवरोध और

(IV) पर्यावरण की क्षति।

हमारी इस गोष्ठी का उद्देश्य यही है कि जनसामान्य में आपदाओं के प्रति चेतना आग्रत हो, लोगों को इनके वैज्ञानिक कारण मालूम हों और किसी दुर्घटना के पूर्व और दुर्घटना के बाद बिना मानसिक सन्तुलन खोये इनका मुकाबला कर सकें। वैसे इन दुर्घटनाओं को रोका तो नहीं जा सकता किन्तु सही समय पर इनकी सूचना मिलने पर इनसे होने वाली जन-धन की हानि को कम अवश्य किया जा सकता है।

इसलिए दो बातों की विशेष रूप से आवश्यकता है। एक तो अच्छे से अच्छे वैज्ञानिक उपकरण या यन्त्र जो समय से पूर्व किसी आपदा की सूचना दे सकें और दूसरा दुर्घटना हो जाने के बाद का प्रबन्ध।

पहला काम वैज्ञानिकों का है। वे इस काम में जुटे भी हैं। 50 अप्रैल 1991 को सूचना प्राप्त हुई कि भारी वर्षा के बावजूद पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा के पूर्वी समुद्र तट पर चक्रवात नहीं आयेगा। इससे वहाँ के निवासियों को कितनी राहत मिली, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। किन्तु इसी चक्रवात ने बांग्लादेश में लाखों लोगों की जानें ले ली, कितने ही क्षेत्र जलमग्न हो गये और कई लाख लोग बेघर हो गये। उनकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई।

अतएव आज आवश्यकता है उन अनुसन्धानों की जो समय से पूर्व इनकी सूचना दे सकें ताकि क्षेत्र विशेष से लोगों को हटाया जा सके। किन्तु कोई क्षेत्र जब किसी आपदा की चपेट में आ जाता है तो हमारा काम और बढ़ जाता है। ऐसे अवसर मनुष्य की परीक्षा की घड़ी होते हैं। किस प्रकार प्रभावित लोगों की सहायता की जाये और बिगड़े पर्यावरण को कैसे सुधारा जाये, यह काम कठिन और चुनौतीपूर्ण होता है। यानी आपदा के पूर्व, आपदा के दौरान और आपदा के बाद हमें क्या करना चाहिए, इसकी जानकारी का होना अति आवश्यक है। इस जानकारी को जनसामान्य तक सम्प्रेषित करने के लिए दूरदर्शन और आकाशवाणी सशक्त माध्यम हैं। किन्तु आमतौर से इन आपदाओं से शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र अधिक प्रभावित होते हैं और गाँवों के निर्धन निवासियों को 'दूरदर्शन' की सुविधा नहीं है। अतएव ऐसे क्षेत्रों में आकाशवाणी सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है। स्थानीय और छोटे समाचारपत्रों का भी अपना महत्व है।

राहत कार्यों में तीन तरह के लोगों की भूमिकायें विशेष महत्व रखती हैं। आपदा से प्रभावित लोग, स्वयं-सेवी संस्थायें और सरकारी कर्मचारी। इनमें से सबसे पहले तो प्रभावित लोगों को ही बिना आतंकित (पैनिकी) हुए घायलों, वृद्धों, महिलाओं और बच्चों को प्रभावित क्षेत्र से हटाने का काम करना होगा। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा राहत कार्य तो बाद की बात है। पर सरकार की भूमिका विशेष महत्व रखती है क्योंकि किसी आपदा की पूर्वसूचना सरकारी तन्त्रों द्वारा ही प्रभावी हो सकती है और व्यापक स्तर पर सुनियोजित प्रबन्ध भी सरकार ही कर सकती है। सरकार राहत और सहायता के जितने साधन उपलब्ध करा सकती है, उतने कोई और संस्था नहीं। वैसे इस दिशा में "रेडक्रास" का योगदान विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

इस अंक के लेखों में आपदाओं से सम्बन्धित पूरी जानकारी है, ऐसा हमारा कोई दावा नहीं है। यह तो मात्र एक कदम है। किन्तु एक बात मैं स्पष्ट कहना चाहूँगा कि हमारे लेखकों ने वास्तव में श्रम किया है, पसीना बहाया है और इलाहाबाद की भीषण गर्मी और तपते सूर्य के थपेड़ों को झेलते हुए एक हफ्ते तक 'कार्यशाला' में भाग लेकर वास्तव में प्रशंसनीय कार्य किया है। मैं इन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

आभारी तो मैं श्रद्धेय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० रामचरण मेहरोत्रा का भी हूँ। स्वामीजी ने कृपा करके 18.6.1991 को "रामन और उनके सहयोगी" विषय पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिया और यह बताया कि रसायन विज्ञान से सम्बन्धित होते हुए भी 'जेली' विषय पर रामन के साथ शोधकार्य किया। रामन के सम्बन्ध में अपने निजी संस्मरण भी सुनाये।

25.6.1991 को विज्ञान परिषद् ने कुलपति प्रो० मेहरोत्रा को स्वागत के लिए निमन्त्रित किया। प्रो० मेहरोत्रा परिषद् के सभापति (1979-82) और 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक (1947-1949) भी रहे हैं। इलाहाबाद उनकी शिक्षास्थली और प्रारम्भिक कार्यस्थली रही है। इलाहाबाद और विज्ञान परिषद् से प्रो० मेहरोत्रा को विशेष अनुराग है। सो प्रो० मेहरोत्रा परिषद् का आमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर परिषद् में आये, और हमें सम्बोधित कर हमारा उत्साहवर्धन किया। प्रो० मेहरोत्रा, लखनऊ, गोरखपुर, जयपुर, दिल्ली होते हुए पुनः इलाहाबाद आ गये हैं।

स्वामी जी ने अब अपना अधिक से अधिक समय इलाहाबाद में ही व्यतीत करने का निर्णय किया है, स्वस्थ हैं और 'अथर्व वेद' पर कार्यरत हैं।

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै ॥"

आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय
विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।

(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।

(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।

(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।

(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।

(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।

(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

जुलाई 1991

विज्ञान

पंजीकृत संख्या ए० डी 45

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है, यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु०; चौथाई पृष्ठ 50.00; आवरण द्वितीय; तृतीय तथा चतुर्थ 500.00 रु०।

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे; यह अंक : 4 रुपये

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002